गोस्वामी तुलसीदास कृत

अयोध्याकाण्ड रामायण ।

सम्पादक

अध्यापक रामरत्न व पं० चन्द्रहंस शर्मा

प्रकाशक

रत्नाश्रम—आगरा ।

मुद्रक—पं० ब्रजनाथ शर्मा

कोरोनेशन प्रेस, आगरा ।

तृतीयावृत्ति
११००

सं० १९८१ वि०

धन्यवाद ।

गतवर्ष अयोध्याकाण्ड का यह संस्करण प्रकाशित किया गया था । अध्यापक जी ने एक विस्तृत भूमिका में अयोध्याकाण्ड सम्बंधी चरित्रों के चरित्र-विश्लेषण द्वारा रामायण-काल की सभ्यता का रहस्य भली प्रकार समझाया है । और भी जानने योग्य बातों पर प्रकाश डाला है । आवश्यकीय टिप्पणियों से यह संस्करण बहुत ही उपयोगी होगया है । शिक्षा-विभाग युक्त प्रदेश ने अपनी उदार सम्मति द्वारा इस संस्करण को अपनाया है; इसके लिये मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ । सर्वसाधारण के जानने के लिये कमेटी की सम्मति नीचे प्रकाशित की जाती है ।

मिति शुद्ध श्रावण ८ — मैनेजर

सं० १९७७ विक्रमाब्द; । — रत्नाश्रम-आगरा ।

A COPY OF THE RESOLUTION PASSED BY THE FIRST GENERAL MEETING OF THE TEXT-BOOK-COMMITTEE, U. P.

Held on 19th March 1920.

Letter No. G. $\frac{1250}{19-19}$ Dated Allahabad 19-4-20

Name of Publication	Recommendation
1. Tulsi Dass Ajodhia Kand Ramayan edited by Pt. Ram Ratan Adhyapak and Pt. Chandra Hans Sharma, Ratan Ashram, Agra. Price -/12/-	Recommended as a approved edition of Ajodh Kand wherever the boo is now prescribed or reco mmended (Normal Schoo Training Classes and L. C. Classes.)

उपोद्घात

रामायण क्या है ?

नवीन भारत के लिये, आर्ष भारत जो अतुलनीय और अप्रातिम मीरास (पैत्रिक-सम्पत्ति) छोड़ गया है-जिस के बल से अवनति के गहरे आवर्त में पड़ी हुई दीन-हीन-हिन्दू जाति आज भी संसार की वैभवसम्पन्न जातियों के सामने साभिमान सिर उठा सकती है--जिस के कारण अति जीर्ण-शीर्ण वृद्ध भारत मरते मरते भी अपने दिव्य तेज से नयी मायावी-सभ्यता के चकाचौंध को एक दम रूखा कर देता है--जिस के प्रभाव से आज भी संसार के पवित्र और निष्कपट हृदयकोश अनुपम-रत्नों से भरे पड़े हैं। वह आर्य जाति का रामायण नामक राष्ट्रीय कोष है। इस प्राचीन कोष को सर्वाङ्गपूर्ण सम्पत्ति, जैसे जैसे व्यय हुई, बढ़ती ही चली गई। इस कोश में इतिहास भी है और काव्यतत्व भी, निगमागम सम्मति है, और लौकिक चरित्रों की इयत्ता भी। किसी राष्ट्र की सच्ची सम्पत्ति उस देश का प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य ही है, नकि ईंट पत्थर। साहित्य से आदर्श मिलता है, आदर्श से चरित्र-गठन होता है। चरित्र से स्वावलम्बन, धैर्य, वीरता आदि मनुष्योचित गुण उत्पन्न होते हैं।

इन्हीं गुणों से व्यक्तियों के हृदय बाँधे जाते हैं जिससे समाज-संगठन होता है। इस प्रकार के समाजों की आत्मीयता का एकीकरण,

अथवा यों कहिये 'नीर क्षीर-न्यायेण' सम्मिलन, राष्ट्र निर्म्माण का हेतु होता है--उत्कृष्ट-राष्ट्र-निर्म्माण, उत्कृष्ट आदर्श पर निर्भर है। इस प्रकार के आदर्श उत्कृष्ट साहित्य से ही मिलते हैं।

हमारा रामायण नामक महाकाव्य ऐसे ही उच्च आदर्शों का भण्डार है। रामायण के आदर्श दूसरी जातियों की सम्पत्ति को हड़प करने तथा उन पर प्रभुता जमाने के लिये किसी प्रकार का आयोजन वा संगठन नहीं कराते, बरन मनुष्योचित पवित्र प्रेम वा गृहधर्म का उपदेश देते हैं। वह पिता पुत्र में, पति पत्नी में, भाई भाई में, धर्म और प्रेम का सम्बन्ध कराते हैं। 'पिता की आज्ञा मानना, भाइयों का आत्मत्याग, आदर्श पति-पत्नीत्व, राजा प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध व कर्त्तव्य' यही रामायण के महाकाव्य का मुख्य विषय है।

इस परम पवित्र साहित्य-सरित का स्रोत श्री बाल्मीक जी की ओजस्विनी लेखनी से प्रसूत हुआ है। अनन्त काल से लेकर आज तक, इस विशाल-धारा से छोटा मोटा प्रवाह ले, अनगणित व्यक्तियों ने अनेक नद नदीसरों की रचना की है। इसी सिलसिले में प्रातःस्मरणीय गो० तुलसीदास ने भी एक परम सुन्दर दिव्य मानसरोवर की रचना की है, इसका नाम राम-चरित-मानस है, यथाः—

'राम-चरित-मानस यहि नामा। सुनत श्रवण पाइय विश्रामा ॥
मनकरि विषय-अनल-बनजरई। होय सुखी जो यहि सर परई ॥
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद-पुराण उदधि, घन साधू ॥
बरसिह राम सुयश बर बारी। मधुर मनोहर मंगल कारी ॥

लीला सगुण जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता कर मल हानी॥
प्रेम भक्ति जो बरनि न जाई। सोई मधुरता शीतलताई॥
सो जल सुकृत-शालि हित होई। राम भक्त-जन जीवन सोई॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सिमिट श्रवण मगु चलेउ सुहावनु
भरेउ सो मानस सुतल थिराना। सुखद शीत रुचि चारु चिराना॥

सुठि सुन्दर संवाद वर विरचेउ बुद्धि विचार।
तेइ इहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

सप्त प्रवन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना॥

इस प्रकार सुमति भूमि में·········आदि २ गोस्वामी जी ने मानस-सर की रचना की है। इस सर के सात सोपान (काण्ड) हैं। इस तालाब का वर्णन बाल काण्ड में तुलसीदास जी ने बड़ी उत्तम रीति से किया है। गोस्वामी जी के शास्त्रीय विचार; लौकिक व्यवहारों की अभिज्ञता, भाषा पर अटल अधिकार और अपूर्व कवित्व शक्ति के नवीन आविष्कार, इस रचना को ऐसा भव्य बना चुके हैं कि "गिरा अनयन नयन बिनु बाणी" ही कहना पड़ता है।

रामायण का सम्मान वा पद।

जो हो, राम-चरित-मानस हिन्दू-जाति की अमूल्य सम्पत्ति, धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक शिक्षाओं का भाण्डार, मानसिक तथा आत्मिक आनन्द का समुद्र और काव्य-गुणों का अनुपम आगार है।

साधारण अक्षराभ्यासियों से लेकर धुरंधर विद्वानों तक नित नयी श्रद्धा के साथ इसका पाठ करके आनन्द प्राप्त करते हैं। रामायण के लिये हिन्दू-समाज में जितना आदर है, उस के लिये हृदय में जितना ऊंचा स्थान है, अन्य किसी ग्रंथ के लिये नहीं। इस ग्रंथ के छोटे और बड़े सैकड़ों प्रकार के नित नये संस्करण निकले और निकल रहे हैं, परन्तु इन संस्करणों में

अनेक दोष

भी आगये हैं। जहां तहां लोगोंने क्षेपक कथाएँ गढ़ कर चिपकादी हैं। चिपकाने वालों का कुछ भी अभिप्राय रहा हो, परन्तु तुलसीदास जी की कविता से यह नवीन गढंत ज़रा भी जोड़ नहीं खाती। ऐसा मालूम पड़ता है कि सोने के सितारों में किसी ने कंकड़ी मिलादी हो—

दूसरी बात खटकने वाली यह है कि कुछ अहम्मन्य पंडितों ने तुलसीदासजी की भाषा शुद्ध करने का प्रयास किया है-भाषा के जीवन-मूल प्रचलित शब्दोंको शुद्ध संस्कृत बनाया गया है। ब्रजभाषा के 'स' 'ब' को शुद्ध करके 'श' 'व' किया गया है। कहीं २ मुहाविरों की भी ऐसी ही छीछालेदर हुई है। रामायण की

भाषा

में अवधी और बैसवाड़ी शब्दों और मुहाविरों का ही प्रायः बाहुल्य है। वैसे तो इन्होंने हर भाषा के शब्दों को मोड़ मोड़ कर

इच्छानुसार बना डाला है, परन्तु, वह इन की कविता के बेजोड़ नगीने हैं।

'करब' 'जानब' 'भरब,' 'सुनिय' 'होउब' 'कहब' 'कोहाब' 'गरीब' 'निबाजू' 'साहिब' 'ठाहर,' 'फुर' 'ढरके,' 'खुमारू' 'गुदारा' 'बाट परे,' 'कठौता' 'बारह बाट' 'बियानी,' 'रजाई' आदि ग्रामीण प्रयोग भी इनकी कविता में उच्च पद को प्राप्त हुए हैं। जहाँ पर जिस—

रस

का वर्णन आया है, उसका सजीव चित्र खड़ा कर दिया है। राम-बन-गमन, सुमन्त के प्रत्यागमन और भरत के अयोध्या-प्रवेश-स्थल पर सचमुच "करुणारस-कटकई" अयोध्या में आकर उतरी है। ससैन्य भरत के बनागमन का समाचार पाने पर 'निषाद राज और लछमण के व्याख्यान' वीरता की मूर्त्ति हैं। वशिष्ट जी का भरत को समझाना शान्ति का सर्वोत्तम पाठ है। शृङ्गार का सर्वोत्तम वर्णन होने पर भी वह भक्ति और प्रेम का उद्गम हो गया है, स्त्री बच्चों के सम्मुख भी किसी व्याख्याता को कभी ज़राभी संकोच करने की जरूरत नहीं पड़ती। तुलसीदास जी ने पुराण और इतिहास सम्बन्धी विचारों के अतिरिक्त वेदान्त आदि शास्त्रीय गूढ़ विचारों को जिस खूबी से दर्शाया है, उससे बढ़कर लौकिक विचारों के चित्र खींचने में सिद्ध-हस्तता दिखाई है। इनकी मनन शक्ति, स्मरणशक्ति और निरीक्षण शक्ति अत्यन्त तीव्र और बुद्धि बड़ी ही कुशाग्र थी। जो—

उपमाएँ

इन्हों ने कविता में घटित की हैं, वह इस का स्पष्ट प्रमाण है। रूपक घटाने में वह अद्वितीय कवि थे। कहीं २ इनके रूपक शुद्ध, कहीं २ उत्प्रेक्षा, उपमा तथा अन्य अलंकारों से संकरित हैं। अन्य अलंकारों का भी स्थान २ पर प्रयोग किया है। जो साहित्य-गवेषणा करने वालों के मनन करने योग्य है। यमक और छेकानुप्रासों पर अधिक ज़ोर नहीं दिया है। इस महाकाव्य में विविध प्रकार के छंदों का प्रयोग न करके केवल—

दोहा और चौपाई

नामक मात्रा वृत्तों से काम लिया है, कहीं २ हर गीतिका व गीतिका छन्द भी आए हैं। अस्तु काव्य-सम्बन्धी विशेष विवेचन तो इस छोटी सी भूमिका में नहीं हो सकता। ऐसी विवेचना का नमूना श्रीयुत मिश्रबंधुकृत हिन्दी के इतिहास में:—

" जे पुर ग्राम बसहिं मग माहीं।
तिनहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं। "

आदि ४ चौपाइयों के काव्य सम्बंधी विश्लेषण में देखिये। अब हम तुलसीदासजी के चरित्र-चित्रण की ओर चलते हैं—पर इतना बताये देते हैं कि ऊपर जिन २ बातों की ओर संकेत किया है—सम्पूर्ण रामायण से सम्बंध रखती हैं; परन्तु मुख्य लक्ष्य—

अयोध्या काण्ड

ही की ओर रहा है—यह काण्ड रामचरित मानस का मेरुदण्ड है अन्य काण्डों से इसकी रचना बहुत ही बढ़ कर है। श्रीयुत मिश्र बन्धुओं ने नवरत्न पृष्ठ ४६ में लिखा है:— "अयोध्या काण्ड की रचना केवल भाषा साहित्य की ही नहीं वरन संसार के समस्त साहित्यों की रत्न है। ऐसी मनोमोहिनी-कविता हमने किसी भाषा में नहीं देखी इस काण्ड को उलटते ही जान पड़ता है कि मानो पाठक आनन्द सागर में निमग्न हो जाता है। अलौकिकानन्द देने वाली और सुन्दर काव्य की इतनी उत्तम और प्रचुर सामग्री किसी अन्य ग्रंथ में नहीं।" यह काण्ड राम जी के राज तिलक की तैयारी से प्रारंभ होता है, मंथरा कैकेई के द्वारा रस भंग कराती है। राम वन को जाते हैं और दशरथ सुरपुर को। भरत ननिहाल से लौट कर राम को मनाने जाते हैं। राम-भरत समागम होता है। भरत पादुका लेकर लौट आते हैं। राज्यासन पर खड़ाऊं रक्खी जाती हैं। भरत नंदिग्राम में तप करते हैं और मंत्री राजकाज। यही इस काण्ड का कथानक है।" सब से प्रथम हम प्रधान नायक—

रामचन्द्र जी

की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं श्री वाल्मीक जी ने रामचन्द्र जी के असाधारण गुणों का कोई दो पृष्ठ में वर्णन किया है। तुलसीदास ने रामचरित्र का निष्कर्ष "प्रसन्नता या न गता-भिषेकतः' श्लोक द्वारा अयोध्या काण्ड के प्रारंभ ही में कह दिया है। अभिषेक के समाचार पाकर जिसके चहरे पर प्रसन्नता के चिन्ह नहीं

और उत्तेजित स्वभाव उन्हें दूसरी ओर बहा लेगया। समझे कि राज्य मद से अंधे होकर भरत ने राम पर चढाई करदी, वह स्वार्थवश पुराने प्रेम को भूल गये। बस, एक बड़ा भारी भड़काने वाला नीति और ऐतिहासिक तत्वों से भरा हुआ व्याख्यान दे डाला। व्याख्यान बड़ा ही प्रभावशाली और वीरोचित था। किसी मनुष्य का हृदय उसे सुनकर उत्तेजित हुए विना नहीं रहता। परन्तु राम का गंभीर हृदय इनकी युक्तियों और उत्तेजनाओंसे ज़राभी विचलित नहीं हुआ। लक्ष्मण व्याख्यान देते हुए समझते जाते होंगे कि मेरी प्रबल और निष्कपट युक्तियों को भाई समझे रहे हैं; शीघ्रही भरत से युद्ध करने की आज्ञा मिली जाती है। परन्तु सरल-हृदय राम धीरे से कहते हैं:—

"कही तात तुम नीति सुहाई। सबते कठिन राज-मद भाई॥
जो अँचवत मातहि नृप तेई। नाहिन साधु सभा जेहि सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीखा॥
भरतहिं होइ न राज-मद विधि हरि हर पद पाय॥
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि छीर-सिन्धु विनसाय॥"

आदि अनेक वाक्यों से पता चलता है कि भाई की कितना विश्वास था। वह भरत-स्वभाव की स्थिरता को कहाँ तक समझे हुए थे कि हर-हरि और विधि-पद से भरत को राजमद नहीं हो सकता। इस कारण राम के चित्त में अनास्थिरता नहीं हुई, हुई तो केवल इसलिये कि, प्यारे भरत, प्रेम-बस लौटाने या साथ चलने का हठ न करें,

हीं तो कुछ ठिकाना नहीं, सब मामला बिगड़ जायगा। जब भरत मने आये तो राम, प्रेम में ऐसे विह्वल हो गये:—

"उठे राम अति प्रेम अधीरा।
कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा।"

राम का हृदय शील, संकोच और दयालुता से कूट २ कर भरा था है। जब राजा ने राज्यभार देने का आयोजन किया तो इनको ल में बड़ा ही संकोच हुआ। चारों भाई, साथ २ खेले, कर्णबेध ोपवीत, विवाह साथ २ हुआ 'परन्तु विमल वंश में यह ही अनु- ात है' 'अनुज विहाय बड़ेहि अभिषेकू।' नीति और लोक उचित मझें या अनुचित, शास्त्र विधि कहे या निषेध, पर राम जी का स्वा- त्यागी हृदय तो, इसे बिल्कुल अनुचित समझता है वह सोचते हैं ब भाई एक से, क्यों किसी की हकतलफ़ी हो अथवा छोटे बड़े किसी से किसी एक को राजा बना देना चाहिये, बड़े ही को क्यों!

यही क्यों, जब राजभवन में दशरथ बेहोश पड़े हुए थे, उनकी शा बहुत ही करुणा-जनक थी, राम ने क्रोधित कैकेई से पूछा 'महा- ाज की ऐसी दशा क्यों है? निष्ठुर कैकेई से सारा प्रसंग—अपने देश- ाकाले और भरत को राज्य पाने का—सुना। देखिये, क्या हुआ,—

"मन मुसिक्याय भानु कुल-भानू।
राम सहज आनन्द-निधानू॥

बोले—'.............................

....

भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू।
बिधि सब बिधि मोहि सन्मुख आजू ॥"

क्या कहना है, राम के त्याग और धीर का ऊपर थोड़ा परिचय है—उनके अनगणित गुणों का यहाँ उल्लेख करना सर्वथा असंभव है। और जिन

भरत

के सम्बन्ध में तुलसीदास जी कह चुके हैं—

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाय मन विधि हरिहर
जो न होतु जग जन्म भरत को। अचर सचर चर अचर करत

रामजी भी श्री मुख से फ़रमा चुके हैं—

'भरत कहे मैं, साधु, सयाने।, इस छोटी सी भूमिका में उन भर का क्या अधिक परिचय दिया जा सकता है। ननिहाल से लौट कर भर ने देखा 'अयोध्या चौपट हो गई, राजा का प्राणान्त हो गया और रा का देश निकाला। उस समय भरत की करुणाजनक अवस्था का चि खींचना कवि की कल्पना से बाहर है। कैकेई सम्वाद सुना चुके मंथरा भी आ पहुँची, शत्रुघ्न ने उस में लात जमादी और घसीटा 'भरत जी ने इसे पसन्द नहीं किया, उसे छुड़वा दिया—भरत साधुता का कैसा अच्छा परिचय है। आगे जब राजा की अन्त्येष्टि सब लोग निवृत्ति हुए। बड़ी भारी सभा हुई। भरत को राज्यास पर बैठने का प्रस्ताव हुआ। भरत जब आना कानी करने लगे

तो राज नीति-विशारद वशिष्ठजी ने एक बड़ा व्याख्यान दिया। अनेक प्रमाणों से बतलाया कि पिताकी उचित और अनुचित कैसी ही आज्ञा हो, माननीय है। और मैं भी अनुरोध करता हूँ। माता कौशिल्या ने भी समझाया। सार यह है कि पिताकी आज्ञा, गुरुका अनुरोध, माताका आग्रह और सभा का निश्चय; यह तो सब कुछ—परन्तु "प्राण प्यारे भाई का देश निकाला और मैं राजा बनू।,, इस भाव को उन के जी से कोई न टालसका, बड़ी नम्रता से उनके प्रस्ताव का विरोध करते हुए युक्ति-युक्त व्याख्यान दिया कि—

" गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिय हित जानी॥
....
....

यद्यपि यह समुझत हों नीके।
तदपि होतु परितोष न जीके॥

क्यों ?

" पितु सुर पुर, सियराम बन, करन कहहु मोहिं राज। ,,
....

'हित हमार सिय-पति सेवकाई। सो हरि लीन मातु कुटिलाई।
मैं अनुमान दीख मनमाहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सोक-समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे॥'
....
....

धन्य भ्रातृ-प्रेम और धन्य त्याग ! संसार के इतिहास में क्या क
भी ऐसा उदाहरण मिल सकता है, त्याग और प्रेम से भरा हुआ भरत का यह व्याख्यान बार २ मनन करने योग्य है।

अन्त में सत्य-हृदय की विजय हुई, नीति और इतिहास दुम दबाकर भाग गये। भरत की बात का विरोध करने की किसीको हिम्मत नहीं हुई। निश्चय हुआ:-'सब मिलकर राम को मना लावें। सब ब को गये, रामजी से सम्मिलन हुआ:—

भरत जी ने रामचन्द्र जी से लौटने के लिये अश्रुपूर्ण नेत्रों विनय की। राम जी ने सारा भार भरत पर रख दिया-इस स्थल प जो आपस में वार्त्तालाप हुआ, मनन करने योग्य है।

बड़ी ही मार्मिक घटना है। प्रेम पूर्ण दो हृदय किस प्रकार ए दूसरे की रक्षा करते हुए अपने २ कर्त्तव्यों के पालन करने को दृढ़ हैं अन्त में राम की विजय हुई, किसी तरह से भरत को लौटाने के लि राज़ी कर लिया। भरत राम की खड़ाऊँ सिर पर धर अयोध्या की ओ लौटे। पर राम जब तपस्वी का भेष धर वनोवासी हैं—भ्रातृ-भक्त भ कब राजलक्ष्मी का उपभोग कर सकते हैं-उन्होंने भी अयोध्या निकट नंदिग्राम में वल्कल वसन धारण कर वनोवासी की भाँति रह प्रारम्भ कर दिया।

यही दोनों राम और भरत अयोध्या काण्ड के प्रधान प हैं। पर .....

लक्ष्मण

जीका चरित्र भी कुछ कम उल्लेखनीय नहीं है। यह रामचन्द्र

के सबसे निकटस्थ और सहज-संगी थे। बड़े भाई को पिता के तुल्य समझते थे। इन्होंने सुना कि राम बन जा रहे हैं, दौड़े हुए भाई के पास गये।

मार्ग में शंका करते हुए जाते थे:-

'रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा॥'

लक्ष्मण में कहाँ ताकत थी कि भाई की आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी कर सकें। रामचन्द्र जी ने बहुतेरा समझाया कि हर तरह से तुम्हारा घर पर रहना ही उचित है-इन्होंने स्पष्ट कह दिया—

"गुरु पित मातु न जानौं काहू।
कहहुँ स्वभाव नाथ पति याहू॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी।
दीनबन्धु उर अंतरयामी॥

अपनी अप्रतिम श्रद्धा और प्रेम से-अनेक कारण अयोध्या में रहने के होने पर भी-इन्होंने राम से बन चलने की आज्ञा लेली। स्त्री और माता को त्यागि, भाई के साथ तपस्वी बन कर रहने में जीवन को सफल समझा। यह हृदय के बड़े सरल और स्पष्ट वक्ता थे—सुमंत राम को पहुँचा कर वन से लौट रहे थे, राम 'पिताजी से क्षेम-कुशल कहना' समझा रहे थे, लक्ष्मण ने उस समय बहुत कठोर वचन कहे। राम ने सुमंत को शपथ दिलाई कि महाराज से लक्ष्मण की बात न कहना। दीन वचन कहना तो लक्ष्मण जानते ही न थे—

लक्ष्मण परशुराम सम्वाद पढ़ने में यह बातें स्पष्ट हो जाती हैं—क्रोध भी इन्हें बहुत शीघ्र आता था, और चट पट भी कर बैठते थे—कैकेई ने मंथरा को असंतुष्ट देखकर कहा—

"हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे।
दीन लखन सिख अस मन मोरे॥"

भरतागमन के समय चित्रकूट पर जो इन्हों ने भाषण दिया उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"कहँ लगि रहिय सहिय मन मारे।
नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥
आय बना भल आज समाजू।
प्रगट करौं रिस पाछिल आजू॥

अस्तु। इन्हों ने जिस प्रेम और भक्ति से भाई की सेवा की वर्णन नहीं की जा सकती।

"सिय सुमन्त भ्राता सहित, कंदमूल फल खाय।
सयन कीन्ह रघुवंश-मनि पाँय पलोटत भाय॥
उठे लखन सोवत प्रभु जानी।
कहि सचिवहिं सोवन मृदुवानी॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन।
जागन लगे बैठि वीरासन॥"

क्या कहना है? कैसी अपूर्व भ्रातृ-भक्ति है। लक्ष्मण जैसा आदर्श पुत्र होने का श्रेय आदर्श माता—

सुमित्रा

ही को है। सुमित्रा सचमुच गृहलक्ष्मी थीं। आदर्श गृहस्थी
लिये जिन २ गुणों की आवश्यक्ता है, सुमित्रा में कूट २ कर भरे
ए थे। दूरदर्शिता, धर्म-निष्ठता तथा कर्त्तव्य-परायणता का पाठ
क्ष्मणजी ने इसी से सीखा होगा। जिस समय रामजी को राजी कर
क्ष्मण माता के पास विदा माँगने गये-समझे थे कि माता कहीं
धा न डाल दे। परन्तु आदर्श माता सुमित्रा ने स्पष्ट कह दिया—

"तात तुम्हार मातु बैदेही।
पिता राम सब भांति सनेही॥
जौपै सीय राम बन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥"

धन्य माता! क्या संसार में ऐसा उदाहरण और कहीं मिलेगा?
सुमित्रा राजा दशरथ की दूसरी रानी थी, पहली का नाम था—

कौशिल्या।

रामचन्द्र इन्हीं के पुत्र थे। कौशिल्या के धैर्य्य को देखने के
लिये बड़े साहस की आँख चाहिये। जब इनको मालूम हुआ 'राज्य
के बदले मेरे बेटे को बनोवास मिला।' तो स्नेह और धर्म ने थोड़ी
देर के लिये इनके मस्तिष्क में रण-रंग मचा दिया। धर्म और स्नेह
के विचारों में टक्करें हुईं—

"राखहु सुतहि करौं अनुरोधू, धर्म जाय अरु बंधु विरोधू।
कहौं जान बन तौ बड़ि हानी, संकट सोच बिबस भइ रानी"॥

थोड़ी ही देर में धर्म की विजय होगई। दूरदर्शिता, गम्भीरता, धैर्य आदि सेनापतियों ने बड़े साहस के साथ अपना काम किया।

खेत धर्म के हाथ रहा—स्नेह ने नम्र होकर क्षमा प्रार्थना करली और अपने हाथ से धर्म के मस्तक पर विजय तिलक कर दिया। संधिपत्र के अनुसार कौशिल्या ने फर्मान निकाला:—

"तात ! जाउँ बलि कीन्हेउ नीका।
पितु आयसु सब धर्मक टीका॥

राज देन कहि दीन्ह बन मोहि न दुख लवलेश।"

केवल चिन्ता है तो इस बात की कि:—

"तुम बिन भरतहिं भूपतिहि प्रजहिं प्रचण्ड कलेश"।

इन के हृदय में ईर्षा द्वेष आदि विकारों का तो नाम निशान ही नहीं था। सौतेली माता ने, पुत्र को देश निकाले का दण्ड दे दिया; परन्तु उसी सौतेली माता की ओर संकेत करके यह कहती हैं—

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।

धन्य कौशिल्या, तेरे विशाल हृदय को धन्य है।

यदि आप कौशिल्या के धैर्य का इससे भी अधिक परिचय पाना है तो वहां चलें, जहां दैव-दलित दशरथ पड़े हुए हैं। सुमन्त ने आकर राम के न लौटने का समाचार सुना दिया है। दशरथ जी के आशा-तंतु बिल्कुल छिन्न भिन्न होगये हैं। ऐसे विकट समय

रामचन्द्र वन की तय्यारी कर रहे हैं। सीता जी को चिन्ता हुई कि कहीं मुझे छोड़ न जांय। साथ चलने के लिये बहुत कुछ अनुनय-विनय की। रामचन्द्र जी ने वन के घोर दुःख और विकट अवस्था समझा कर इन्हें रोकना चाहा। और घर रहने में इन्हें किसी प्रकार को दुःख भी नहीं होता; माता कौशिल्या इन्हें बहुत प्यार करती थीं—

"नैन पुतरि इव प्रीति बढ़ाई।"
"दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।"

परन्तु यह संसार के सारे संकटों को, प्यारे के वियोग-दुःख के लवलेश के तुल्य भी नहीं समझती थी। एक ही बात में सारे व्याख्यान का उत्तर दे दिया—

"मैं सुकुमारि! नाथ वनजोगू!! तुमहिं उचित तप! मोकहँभोगू!!!

बात थोड़ी सी है, परन्तु आर्य सभ्यता का रहस्य कूट कूट के भरा है:—हृदयेश पर विपत्ति, मैं सुख से रहूँ। स्वामी कंद मूल फल खाकर वन में मारे मारे फिरें और मैं राजमहल में राज्योचित राज–भोग भोगूँ। जो कुछ भी हो-सुख, या दुख, जीवन या मृत्यु, पति के साथ साथ—

"तन, धन, धाम, धरणिपुर राजू।
पति विहीन, सब सोक समाजू॥
नाथ साथ साथरी सुहाई।
प्रभु संग मंजु मनोज तुराई।
कंद मूल फल अमिय अहारू।
अवध-सौध सत सरिस पहारू"—

जिसके लिए है, उसका जीवन-रहस्य संसार को आश्चर्य में डालने वाला क्यों न हो ?

ऊपर के चरित्रों के विकास का कारण महाराजा दशरथ की सत्य-प्रियता है—

"प्राण पुत्र दोउ परिहरेउ वचन न दीनेउ जान।"

अन्य चरित्रों की ऐसी विशेषताएं दिखाई गई हैं जिनका अयोध्या काण्ड से अधिक सम्बंध है—परंतु महाराज दशरथ के चरित्र की कुछ प्रारंभिक बातें ऐसी हैं, जिनके उल्लेख किए बिना काम नहीं चल सकता। यह स्वभाव के बहुत ही उदार और गऊ–ब्राह्मण के रक्षक थे। परोपकार के लिये तो इनका सर्वस्व ही अर्पित था। जब २ देवताओं पर भीड़ पड़ती थी वह दैत्यों से बहुत ही तंग आजाते थे तो उन्हें राजा दशरथ की सहायताकी ज़रूरत पड़ती थी। कैकेई भी प्रायः युद्ध में साथ जाती थी। एक बार ऐसे ही किसी युद्ध में कैकेई की नैमित्तिक सहायता से विजय हुई। उसी के उपलक्ष्य में दो वरदान दिये, जो बहुत दिन तक धरोहर रक्खे रहे और समय पर काम आए।

एक बार राक्षसों के अत्याचार से देश में खलबली मचगई। यज्ञ, हवन, वेदपाठ, आदि बंद होने लगे। पवित्र तपोवन राक्षसों के क्रीडा-स्थल हो गये। सब ऋषियों ने सलाह करके विश्वामित्र जी को अयोध्या भेजा। राजा ने इनका बड़ा स्वागत किया और आने का कारण पूछा। ऋषि ने तपोवन की सब व्यवस्था सुनाई और राम को मांगा, उस समय दशरथ जी बड़े चक्कर में पड़ गये, कहा—

मागंहु भूमि धेनु धन कोषा।
सर्बस देहुं आज सह रोषा॥
देह प्राण ते प्रिय कुछ नाहीं।
सोउ मुनि देहुं निमिष इक माहीं॥

इतना तो बात की बात में दे सकता हूं। पर राम के देने में कुछ संकोच है। मैं "ससैन्य चल सकता हूं। राक्षसों से लड़ कर उनके अत्याचार से अपने देश को बचा सकता हूं। परंतु राम सुकुमार है, बच्चे है, "घोर मायावी असुरों के मुक़ाबिले में उन्हें भेजना" समझ में नहीं आया--

"चौथे पन पायेउ सुत चारी।
विप्र बचन नहिं कहेउ संभारी॥"

अस्तु। थोड़ी देर के लिए सर्वस्व दे सकने पर भी पुत्र के न देने का विचार जी में रहा। वशिष्ठ जी ने समझाया कि भारत-मा की छाती से राक्षसी अत्याचार, यदि तुम्हारे पुत्र के द्वारा दूर हो जाय तो तुमसे भाग्यवान कौन होगा? राजा का मोह दूर हो गया। देश और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण से प्यारे पुत्रों को ऋषि के अर्पण कर दिया। धन्य त्याग!

इतने गुण होते हुए भी एक अवगुण था--राजा ने कई विवाह किये। इसी कारण गृह-कलह हुआ।

वृद्ध अवस्था में भी वह संयमी न रहे। कामान्धता से कैकेई की चालों को न समझ सके, और उससे प्रतिज्ञा कर बैठे। परन्तु

प्रतिज्ञा को किस प्रकार निबाहा, यह इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है—

जियत मरन फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा।
जियत राम-विधु बदन निहारा। राम-विरह मरि मरण सँभारा।

जो हो, इस राजवंश के परिचय के साथ २ अन्य कुछ व्यक्तियों का परिचय देना भी उचित है—जिनके कारण रामायण की कथा में सोने में सुगंध आगई है। जिनमें से एक तो—

सुमन्त्र

जो, अयोध्या के राज्यवंश के सच्चे सेवक और हितैषी थे। महाराज की गुप्त-मंत्रणाएँ प्रायः इन से ही हुआ करती थीं। यह बहुत ही उदार और सहृदय थे। रामचन्द्रजी इन्हें सदैव पूज्य दृष्टि से देखते थे।

"तुम पुनि पितु सम अति हित मोरे।
विनती करहुँ तात कर जोरे॥"

रामचन्द्र को पहुँचाकर जब बन से सुमन्त लौटे तो उनकी बहुत ही सोचनीय अवस्था हो गई, उसका वर्णन कल्पनातीत है; एक उदाहरण से कवि ने उस समय की अवस्था का चित्र खींचा है—

"जिमि कुलीन तिय साधु सयानी।
पति-देवता कर्म मन बानी॥
रहै कर्म बस परिहरि नाहू।
सचिव हृदय तिमि दारुण दाहू॥"

क्या ही दारुण वेदना है। इससेः—

" विवरण भयो न जाइ निहारी।
मारेसि मनहुं पिता महतारी॥
हानि गलानि विपुल मन व्यापी।
यमपुर पंथ सोच जनु पापी॥"

ऐसी दशा मेंः—

हृदय न विदरत पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन दुख यम-यातना सरीर॥

आदि, पश्चात्ताप करते हुए अयोध्या आए। अँधेरे में नगर प्रवेश किया। खाली रथ देखकर लोगों की रही सही आशा भी टूट गई। अयोध्या पहुँचकर स्वयं धीरज बाँधा और बड़े पांडित्य-पूर्ण भाषण द्वारा राजा को समझाने की चेष्टा की, पर अंत में "हरीच्छा बलवान है" ही रहा।—अस्तु।

दूसरे निषाद पतिः—

गुह

थे, जिनका चरित्र भी पवित्र प्रेम से भरा हुआ और अति उज्वल था। रामचन्द्र जी से इनका घनिष्ट स्नेह होगया था। वन में जब, रामचन्द्र साथरी पर सो रहे थे और लक्ष्मण धनुषबाण ले पहरा दे रहे थे, निषाद भी उनके पास जा पहुँचा।

" सोवत प्रभुहिं निहारि निषादू।
भयउ प्रेम बस हृदय विषादू॥

"तनु पुलकित जल लोचन बहहीं।
बचन सप्रेम लखन सन कहहीं॥"

इस समय जो दुःख से भरी हुई बात चीत गुह ने की, जिससे उसकी सहृदयता का पता चलता है। इसके सिवाय वह बड़ा भारी वीर भी था। जब यह अनुमान हुआ कि भरत ससैन्य राम से लड़ने जाते हैं-तो अपनी सेना को लड़ने की आज्ञा दी। असहाय राम पर ससैन्य भरत चढ़ कर जाते हैं, जीते जी हम इस अन्याय को कैसे सहें-

होइ सजोइल रोकहु घाटा।
ठाठहु सकल मरन के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेहू।
जियत न सुरसरि उतरन देहू।
समर मरण, पुनि सुरसरि तीरा।
राम काज, छिन भंगु सरीरा।
भरत भाइनृप, मैं जन नीचू।
बड़े भाग अस पाइय मीचू।

अस्तु। इस अपढ़ जंगली जाति के नायक के आत्म-बलिदान की समता क्या किसी सभ्य जाति के इतिहास में कहीं मिल सकती है?

आगरा
श्रावण कृष्णा ५
सं० १९७६ वि०

॥ इति ॥

अध्यापक रामरत्न।



॥ श्रीः ॥

श्रीमद्गोस्वामी

तुलसीदास कृत रामायणम् ।

अयोध्याकाण्ड प्रारम्भः ।

* यस्याङ्के च विभाति[1] भूधर-सुता[2], देवापगा[3] मस्तके,
भाले बालविधुर्गले च गरलं, यस्योरसि व्यालराट्[4] ।
सोऽयं[5] भूतिविभूषणः, सुरवरः, सर्वाधिपः, सर्वदा[6].,
शर्वः[7] सर्वगतः, शिवः शशिनिभः, श्रीशंकरः पातु[8] माम्[9] ॥१
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ॥
मुखांबुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥२॥
नीलांबुजश्यामलकोमलाङ्गम्, सीतासमारोपितवामभागम् ॥
पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंश नाथम् ॥३॥

अर्थः—जिनकी बाईं ओर पार्वतीजी, सिर पर गंगाजी, मस्तक पर नवीन चन्द्रमा, गले में विष, हृदय पर सर्पराज का यज्ञोपवीत, भस्म रमाए, देवताओं में श्रेष्ठ, सब के स्वामी, अविनाशी, संहार करने वाले, सर्वव्यापी, कल्याणकारी तथा चन्द्रमा के समान गौरवर्ण ऐसे श्रीमहादेवजी मेरी सदैव रक्षा करें ॥१॥

राज्याभिषेक में प्रसन्नता को और वनोवास के दुःख से मलिनता को प्राप्त नहीं हुई, ऐसी श्रीरामचन्द्र के मुख-कमल की शोभा, मुझे सुन्दर कल्याण की देने-वाली हो ॥ २ ॥ नील-कमल के समान सुन्दर श्याम और कोमल अङ्ग वाले, जिनके वाम भाग में जानकीजी विराजमान हैं, हाथों में सुन्दर धनुषबाण है ऐसे रघुवंश के स्वामी श्रीरामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥

१ सुशोभित २ पार्वती ३ (देव+अप+गा) गंगाजी ४ नागराज ५ (स. अय) ६ अविनाशी ७ संहारकर्ता ८ रक्षा करें ९ मेरी । * पाठान्तर वामाङ्के

दो०—श्रीगुरु चरन-सरोज[1]-रज, निज मन-मुकुरु[2] सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल जसु, जो दायकु फल[3] चारि॥ १॥

जब तें राम ब्याहि घर आये। नित-नव-मंगल मोद बधाये॥
* भुवन-चारिदस भूधर-भारी। सुकृत[4]-मेघ बरषहिं सुख-बारी॥
रिधिसिधि-संपति-नदी सुहाई। उमगि अवध-अंबुधि[5] कहँ आई॥
मनिगन-पुर-नर-नारि-सुजाती। सुचि-अमोल-सुन्दर सब भाँती॥
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु इतनिअ बिरंचि-करतूती॥
सब बिधि सब पुर-लोग सुखारी। रामचन्द्र-मुख-चन्दु[6] निहारी॥
मुदित मातु सब सखीं सहेली। फलित[7] बिलोकि मनोरथ-बेली॥
रामरूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ॥

दो०—सब के उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु॥
आपु अछत[8] जुबराजपद, रामहिं देहिं नरेसु॥ २॥

एक समय सब सहित समाजा। राज-सभा रघुराजु बिराजा॥
सकल-सुकृत-मूरति नरनाहू। राम-सुजसु सुनि अतिहि उछाहू[9]॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप*[10] रहहिं प्रीति-रुख राखें॥
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि-भाग[11] दसरथ सम नाहीं॥
मंगल-मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥

---

१ (सरः + ज) कमल २ दर्पण ३ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ४ पुण्य ५ जलधिरूपी समुद्र ६ (चन्द्रमारूपी मुँह) ७ फली हुई (कर्मवाच्य) ८ मौजूद (अ+क्षत) ९ (उत्साह) १० लोकपाल * देखो गूढ़ार्थ प्रकाश। ११ बड़-भागी

* पहले ही पद में तुलसीदास जी अलंकारिक-चमत्कार किस खूबी से दिखा रहे हैं इस पद में सम अभेद-रूपक है।

स्रवन[1] समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठ-पनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन-जनम-लाहु किन लेहू॥
दो०-यहि विचारु उरु आनि नृप, सु-दिन सु-अवसरु पाइ।
प्रेम-पुलकि तन, मुदित मन, गुरुहिं सुनायेउ जाइ॥२॥
कहइ भुआलु[2] सुनिअ मुनि-नायक। भये राम सब विधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुर-वासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥
सबहिं रामु प्रिय जेहिबिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोई॥
विप्र-सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु[3] सब रौरिहि नाईं॥
जे गुरु-चरन-रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल विभव बस करहीं॥
मोहि समयछु अनुभयेउ न दूजें। सब पायेउँ प्रभु-पद-रज पूजें॥
अब अभिलाषु एक मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज-सनेहू[4]। कहेउ नरेस रजायसु[5] देहू॥
दो०—राजन, राउर नामु-जसु, सब अभिमत[6] दातार।
फल अनुगामी महिप-मनि[7], मन-अभिलाषु तुम्हार*॥३॥
सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ बिहँसि मृदु-बानी॥
नाथ, रामु करिअहि जुबराजू। कहिअ कृपाकरि करिअ समाजू॥
मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन-लाहू॥
प्रभु-प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ-बचन सुहाए। मंगल-मोद-मूल मनभाए॥
सुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥

---

१ (श्रवण) २ (भूपाल) ३ कृपा ४ स्वभाव से ही स्नेह है जिनमें, (बहुब्रीहि) ५ आज्ञा ६ इच्छाओं-७ (महिपों में शिरोमणि,) सप्तमी तत्पुरुष;

* राजन्, आपके नाम का यश सब इच्छाओं को पूरी करने वाला है—हे महिप-मणि, फल, आपकी मनोभिलाषाओं के पीछे २ चलता है—अर्थात् कोई मनोरथ आपका ढूंढा नहीं पड़ता।

भयेउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीति प्रेम अनुगामी[1]॥

दो०—वेगि विलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु।
सु-दिन सु-मंगलु तबहिं जब, राम होहिं जुवराजु ॥५॥

मुदित महीपति मन्दिर आए। सेवक सचिव सुमंत बोलाए॥
कहि 'जय जीव[2]' सीस तिन्ह नाए। भूप सु-मंगल-वचन सुनाए॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। 'रामहि राय देहु जुवराजू'॥
जौं पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका[3]॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय-वानी। अभिमत-विरव[4] परेउ जनु[5] पानी॥
विनती सचिव करहिं कर-जोरी। जिअहु जगत-पति वरस करोरी॥
जग मंगल भल काजु विचारा। वेगिअ नाथ न लाइअ वारा॥
नृपहिं-मोदु सुनि सचिव सु-भाखा। वढ़त बौंड़[6] जनु लही सु-साखा॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज-अभिषेक-हित वेग करहु सोइ सोइ ॥ ६ ॥

हरषि मुनीस कहेउ मृदु वानी। आनहु सकल सु-तीरथ पानी॥
औषधि मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥
चामर चरम वसन वहुभांती। रोम-पाट-पट[7] अगनित-जाती॥
मनिगन मंगलवस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप-अभिषेका॥
वेद-विदित कहि सकल विधाना। कहेउ रचहु पुर विविध-विताना[8]॥
सफल रसाल[10] पूँगफल[11] केरा। रोपहु वीथिन्ह[12] पुर चहुँ फेरा॥
रचहु मंजु मनि-चौकइँ चारू। कहहु बनावन वेगि वजारू॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा। सब विधि करहु भूमि-सुर-सेवा॥

---

१ प्रेम के अनुगामी (षष्ठी तत्पु०) २ प्राचीनकाल में राजा के सम्मुख जाते समय प्रजावर्ग यह मंगल-सूचक-पद उच्चारण करते थे। ३ तिलक, ४ इच्छारूपी पौधे पर, ५ मानों (उत्प्रेक्षा अलंकार वाचक पद) जनु मानो, जा आदि पदों से एक अर्थ में दूसरे अर्थ की संभावना की जाती है, तो उत्प्रेक्षाऽलंकार होता है। ६ फली बौंड़ी ७ रेशमी वस्त्र ८ चँदोवा १० आम ११ सुपारी। १२ गलियों–

दो०—ध्वज पताक-तोरन-कलस, सजहु तुरग-रथ-नाग[1]।
सिर धरि मुनिवर-बचन सबु, निजनिज काजहि लाग ॥७॥

जेहि मुनीस जो आयसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र-साधु-सुर पूजत राजा। करत राम-हित मंगल-काजा॥
सुनत राम-अभिषेक-सुहावा। बाज गहागह[2] अवध बधावा॥
राम सीय-तनु सगुन जनाए। फरकहिं मंगल-अंग सुहाए[3]॥
पुलकि स-प्रेम परसपर कहहीं। भरत-आगमनु-सूचक अहहीं[4]॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी[5]। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥
भरत-सरिस प्रिय को जगमाहीं। इहइ सगुन-फलु दूसर नाहीं॥
रामहिं बंधु-सोच दिनराती। अंडन्हि कमठ-हृदय जेहि भाँती[6]॥

दो०—ऐहि अवसर मंगलु परम, सुनि हरषेउ रनिवासु।
सोभत लखिविधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि[7] बिलासु ॥८॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन-मन अनुरागीं। मंगल-साज सजन सब लागीं॥
चौकइँ चारु सुमित्रा पूरे। मनि-मय बिबिध-भाँति अति रूरे[8]॥
आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी॥
पूजीं ग्रामदेवि-सुर-नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥
गावहिं मंगल कोकिल बयनी[10]। बिधु-बदनी[11] मृग सावक-नयनी[12]।

दो०—राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर-नारि।
लगे सु-मंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि॥

---

१ हाथी २ गंभीर, गहरी ध्वनि वाले, बधावा का विशेषण ३ पुरुष का दाहिना और स्त्री का बाँया अङ्ग फड़कना शुभ-सूचक माना गया है। ४ हैं। ५ चिन्ता ६ कछुआ तट पर अंडे रख कर जिस प्रकार चिन्तित रहता है। ७ लहर, मानो पूर्ण चन्द्र को देख समुद्र में लहरें बढ़ने लगीं (उत्प्रेक्षाऽलंकार) ८ अति सुन्दर १०-११-१२ कोकिल से बैन हैं जिनके, आदि २ (बहुव्रीहि समास)

तब नरनाह वसिष्ठु बुलाये। राम-धाम सिख देन पठाये॥
गुरु-आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ नायेउ पद माथा॥
सादर अरघ[1] देइ घर आने। सोरह भांति[2] पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय-सहित बहोरी। बोले रामु कमल-कर जोरी॥
सेवक-सदन स्वामि-आगमनू। मंगल-मूल अमंगल-दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि स-प्रीती। पठइअ काज नाथ 'अस नीती'॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयेउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवक लहइ स्वामि–सेवकाई॥

दो०—सुनि सनेह-साने-बचन, मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, 'हंस-बंस-अवतंस'[3] ॥१०॥

बरनि राम-गुन सील-सुभाऊ। बोले प्रेम-पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक-समाजू। चाहत देन तुम्हहिं जुबराजू॥
राम करहु सब संजम[4] आजू। जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू॥
गुरु सिख देइ राउ पहिं गयऊ। राम-हृदय अस बिसमय भयऊ॥
जनमे एकसंग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल-बंस यह अनुचित[5] एकू। अनुज बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम-पछितानि सुहाई। हरउ भगत-मन कै कुटिलाई॥

दो०-तेहिं अवसर आए लपन, मगन प्रेम-आनन्द।
सनमाने प्रिय-बचन कहि, रघुकुल-कैरव-चन्द[6] ॥ १ ॥

बाजहिं बाजन बिबिध-बिधाना। पुर-प्रमोदु नहिं जाइ बखाना॥

आगन्तुक के स्वागत के लिये पात्र से पृथ्वी पर जल छोड़ना, आर्पकाल की स्वागत विधि। २ देखो गूढ़ार्थ कोप ३ हंस (सूर्य) के वंश षठी-तत्पु० हंस वंश में अवतस (भूपण)' सप्तमी त०। ४ व्रत, नियम। ५ यद्यपि नीति उचित समझती है परन्तु राम का स्वार्थत्यागीहृदय इसे अनुचित समझता है। ६ रघुकुल रूपी कैरव, (रूप्य रूपकभाव में रूपक कर्मधारय;) रघुकुल, रूपी कैरव के चन्द्र, (षठी तत्पुरुप)

भरत-आगमनु[१] सकल मनावहिं। आवहिं बेगि नयन-फल पावहिं॥
हाट बाट घर गलीं अथाईं[२]। कहहिं परसपर लोग लोगाईं॥
कालि लगन[३] भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥
कनक-सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होय चित-चेता[४]॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥
तिन्हहिं सोहाइ न अवध-बधावा। चोरहिं चँदिनि राति न भावा॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाँय लै परहीं॥

दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर-काजु॥१२॥

सुनि सुर-बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज-बिपिन-हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी[५]॥
बिसमय-हरष-रहित रघुराऊ[६]। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करम-बस दुख-सुख-भागी। जाइअ अवध देवहित लागी॥
बार बार गहि चरन सकोची। चली बिचारि बिबुध[७] मति-पोची॥
ऊंच निवासु नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती[८]॥
आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदय दसरथपुर आई। जनु ग्रह-दसा[९] दुसह दुख-दाई॥

दो०—नामु मंथरा मंद-मति, चेरि कैकेइ केरि।
अजस-पेटारी ताहि करि गई गिरा[१०] मति फेरि॥१३॥

दीख मंथरा नगरु-बनावा। मंगल मंजुल बाजु बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। 'राम-तिलकु' सुनि भा उर दाहू॥

---

१ आना (भाव वा० संज्ञा) २ (आस्थाई) चौपाल बैठक। ३ मुहूर्त ४-स्फूर्ति, आनन्द ५ खोट, अपराध ६ (अपादानकारक में) ७ देवता ८ वैभव ९ जन्म राशि से ४, ८, १२ स्थान पर शनिश्चर, राहु, मंगल आदि क्रूर-ग्रह हों तो कुदशा होती है। १० सरस्वती।

करइ विचारु कुबुद्धि-कुजाती । होइ अकाजु कवनि विधि राती ॥
देखि लागि मधु कुटिल-किराती । जिमि गौं-तकइ[1] लेउँ केहि भाँती ॥
भरत-मातु पहिं गइ विलखानी ।'का अनमनि' हसि कह हँसिरानी ॥
ऊतरु-देइ नहिं लेइ उसासू । नारि-चरित करि ढारइ आँसू ॥
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें ! 'दीन्हि लषन सिख' अस मन मोरें ॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि । छाँड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥

दो०—सभयरानि कह 'कहसि किन[2], कुसल रामु महिपालु ।
लषनु भरतु रिपु-दमनु' ? सुनि, भा[3] कुबरी-उर सालु ॥१४॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पाई ॥
रामहिं छाँड़ि कुसल केहि आजू । जेहि जनेसु देइ जुबराजू ॥
भयउ कौसिलहि विधि अति दाहिन देखत गरब रहत उर नाहिंन ॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥
पूतु बिदेस, न सोचु तुम्हारे । जानतिहहु 'बस नाहु हमारे' ॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई[4] । लखहु न भूप कपट-चतुराई ॥
सुनि प्रिय-बचन मलिन-मनु जानी । झुकी[6] 'रानि अब रहु अरगानी[7] ॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घर-फोरी[8] । तब धरि[9] जीभ कढ़ावौं तोरी ॥

दो०—'काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि ।
तिय विसेषि पुनि चेरि, कहि, भरत मातु मुसुकानि ॥१५॥

प्रिय-बादिनि[10] सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही ॥
सु-दिनु सु-मंगल-दायकु सोई । तोर कहा फुर[11] जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामि, सेवक लघु भाई । यहु दिन कर कुल-रीति सुहाई ॥

१ घात लगाती है । २ क्यों नहीं ३ हुआ ४ पीड़ा ५ तोषक, तकिया ६ झिड़क कर ७ चुप ८ घर में फूट डालने की बात ९ पकड़ कर १० मिठ बोली (बहुव्रीहिसमास) ११ सत्य ।

राम-तिलकु जौ साँचेहु काली । देउँ माँगु मनभावत आली ॥
कौसिल्या सम सब महतारी । रामहि सहजसुभाय[1] पियारी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥
जौं विधि जनमु देइ करि छोहू । होहु राम-सिय पूत-पतोहू[2] ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्हके तिलक छोभु कस तोरें ॥

दो०—भरत सपथ तोहि, सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ ॥
हरष समय विसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ १६ ॥

एकहिं वार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रौउरेहि लागा ॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहिं, करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहब अब ठकुर-सोहाती । नाहिं त मौन रहब दिन-राती ॥
करि कुरूप विधि परवस कीन्हा । 'बवा सो लुनिअ'[3] 'लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ॥
जारइ जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
तातें कछुक बात अनुसारी । छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी ॥

दो०—गूढ़-कपट प्रिय वचन सुनि, तीय अधर-बुधि रानि ।
सुर-माया-बस वैरिनिहि, सुहृद जानि पतियानि[4] ॥१७॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही । सबरी-गान * मृगी जनु मोही ॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी[5] । रहसी[6] चेरि घात[7] जनु फावी[8] ॥
तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ । धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ॥
सजि प्रतीति, बहुविधि गढ़ि-छोली । अवध साढ़-साती[9] तब बोली ॥

१ स्वभाव से ही २ बहू बेटा ३ काटो ४ विश्वास किया । * भीलनी के गाने से ५ होनहार ६ प्रसन्न हुई ७ दाव ८ (फवती) लगी । ९ शनिश्चर एक राशि पर २½ वर्ष रहता है, जन्म का, बारहवां और दूसरा जन्म राशि से बुरा समझा जाता है, (बहुव्रीहि समास) साढ़े सात वर्ष वाली दशा ।

'प्रिय सियरामु' कहा तुम रानी । 'रामहिं तुम प्रिय' सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । 'समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते ॥
भानु[1] कमल-कुल-पोषनिहारा । बिनु जर जारि करै सोइ छारा[2] ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाउ बर-बारी[3] ॥

दो०– तुम्हहिं न सोचु, सुहाग[4] बल, निज बस जानहु राउ ।
मन-मलीन मुँहु-मीठ नृप राउर सरल-सुभाउ ॥ १८ ॥

चतुर गँभीर[5] राम-महतारी । बीचु[6] पाइ निज बात सँवारी ॥
पठए भरतु भूप ननिऔरें । राम मातु-मत जानब रौरें[7] ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें । गरबित भरत मातु बल पी कें ॥
सालु तुम्हार कौसलहि माई । कपट-चतुर नहिं होइ जनाई ॥
राजहि तुम पर प्रेम बिसेखी । सवति[8] 'सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु[9] भूपहि अपनाई । राम-तिलक हित लगन धराई ॥
यह कुल उचित राम कहँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिलि बात समुझि डर मोही । देउ दैव फिरि सो फलु ओही ॥

दो०–रचिपचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहेसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥ १९ ॥

भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछि रानि निज सपथ दिवाई ॥
का पूछहु तुम्ह अबहुँ न जाना । निज हित-अनहित पसु पहिचाना ॥
भयेउ पाख[10] दिनु सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें । सत्य कहें नहिं दोषु हमारें ॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई । तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई[11] ॥

---

१ सूर्य २ खाक ३ उपायरूपी सुन्दर जल से ४ (सौभाग्य) ५ गहरी, मन के भावों को गूढ़ रखने वाली ६ अवसर ७ आप ८ (सपत्नी) ९ षड्यंत्र, जाल १० (पक्ष) ११ सजा ।

मांहि तिलकु कालि जौं भयेऊ। तुम्ह कहँ बिपति-बीजु बिधि बयेऊ॥
त्र खँचाइ कहउँ बलुभाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
ं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

दो०—*कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहिं कौसिला देव।
भरत बंदि-गृह सेइहहिं, लषनु राम के नेव[1]॥२०॥

कय-सुता सुनत कटु-बानी। कहि न सकै कछु सहमि[2] सुखानी॥
नु पसेउ[3] कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी[4]॥
हि कहि कोटिक-कपट-कहानी। धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी॥
ीन्हिसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू[5]। जिमि न नवै फिर उकठि[6] कु-काठू॥
फरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बाकिहि[7] सराहइ मानि मराली[8]॥
ुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकहि मोरी॥
दिन प्रति देखौं राति कु-सपने। कहौं न तोहि मोह बस अपने॥
काह करउं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

दो०-अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह-दुख दीन्ह॥२१॥

ैहर[9] जनमु भरब[10] बरु जाई। जियत न करबि सवति सेवकाई॥

---

* कद्रू और विनता नामक कश्यप मुनि की दो स्त्रियां थीं सर्पों की माता का नाम कद्रू और पक्षियों की माता का नाम विनता था। एक दिन कद्रू ने विनता से सूर्य के घोड़े की पूँछ का रंग पूंछा कि, कैसा है? उसने कहा गोरा है। कद्रू ने कहा काला है। इस झगड़े में निश्चय हुआ कि चलकर देखो और जिसकी बात झूठी हो वह दासी बनकर रहे। कद्रू को जिताने के लिये घोड़ों की पूछ में सर्प जा लिपटे, तब कद्रू ने विनता को जाकर पूँछ का काला रंग दिखा दिया कि जिससे विनता लज्जित हो उसकी दासी होकर रहने लगी।

१ (नायब) सहायक २ सकुचकर ३ पसीना-आया ४ दाबी ५ बुरे पाठ ६ रूठा हुआ, सूखा ७ बगुली ८ हँसनी ९ पीहर। १० विताऊँगी।

'प्रिय सियरामु' कहा तुम रानी । 'रामहिं तुम प्रिय' सो फुरि बानी
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । 'समउ फिरे रिपु मोहिं पिरीते॥
भानु[१] कमल-कुल-पोषनिहारा । बिनु जर जारि करै सोइ छारा[२]॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाउ वर-बारी[३]॥

दो०– तुम्हहिं न सोचु, सुहाग[४] बल, निज वस जानहु राउ।
मन-मलीन मुँहु-मीठ नृप राउर सरल-सुभाउ ॥ १८ ॥

चतुर गँभीर[५] राम-महतारी । बीचु[६] पाइ निज बात सँवारी॥
पठए भरतु भूप ननिऔरें । राम मातु-मत जानब रौरें[७]
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें । गरवित भरत मातु बल पी कें॥
सालु तुम्हार कौसलहि माई । कपट-चतुर नहिं होइ जनाई॥
राजहिं तुम पर प्रेम बिसेखी । सवति[८] सुभाउ सकइ नहिं देखी
रचि प्रपंचु[९] भूपहि अपनाई । राम-तिलक हित लगन धराई
यहु कुल उचित राम कहँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही । देउ दैव फिरि सो फलु ओही॥

दो०–रचिपचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहेसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥१९

भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछि रानि निज सपथ दिवाई॥
का पूछहु तुम्ह अबहु न जाना । निज हित-अनहित पसु पहिचाना
भयेउ पाख[१०] दिनु सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें । सत्य कहें नहिं दोषु हमारें॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई । तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई[११] ।

१ सूर्य २ खाक ३ उपायरूपी सुन्दर जल से ४ (सौभाग्य) ५ गहरी, मन के भावों को गूढ़ रखने वाली ६ अवसर ७ आप ८ (सपत्नी) ९ षड्यंत्र, जाल १० (पक्ष) ११ सजा ।

ामहि तिलकु कालि जौं भयेऊ। तुम्ह कहँ बिपति-बीजु बिधि बयेऊ॥
ख खँचाइ कहउँ बलुभाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
ौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

दो०—*कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहिं कौसिला देव।
भरत बंदि-गृह सेइहहिं, लषनु राम के नेव[1] ॥२०॥

ाकय-सुता सुनत कटु-बानी। कहि न सकै कछु सहमि[2] सुखानी॥
ानु पसेउ[3] कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी[4]॥
ाहि कहि कोटिक-कपट-कहानी। धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी॥
ीन्हिसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू[5]। जिमि न नवै फिर उकठि[6] कु-काठू॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बाकिहि[7] सराहइ मानि मराली[8]॥
ुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकहि मोरी॥
दिन प्रति देखौं राति कु-सपने। कहौं न तोहि मोह बस अपने॥
ाह करउं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

दो०-अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह-दुख दीन्ह॥२१॥

ाहर[9] जनमु भरब[10] बरु जाई। जियत न करबि सवति सेवकाई॥

---

* कद्रू और विनता नामक कश्यप मुनि की दो स्त्रियां थीं सर्पों की माता का नाम कद्रू और पक्षियों की माता का नाम विनता था। एक दिन कद्रू ने विनता से सूर्य के घोड़े की पूँछ का रंग पूंछा कि, कैसा है? उसने कहा गोरा है। कद्रू ने कहा काला है। इस झगड़े में निश्चय हुआ कि चलकर देखो और जिसकी बात झूठी हो वह दासी बनकर रहे। कद्रू को जिताने के लिये घोड़ों की पूछ में सर्प जा लिपटे, तब कद्रू ने विनता को जाकर पूँछ का काला रंग दिखा दिया कि जिससे विनता लज्जित हो उसकी दासी होकर रहने लगी।

१ (नायब) सहायक २ सकुचकर ३ पसीना आया ४ दाबी ५ बुरे पाठ ६ रूठा हुआ, सूखा ७ बगुली ८ हँसनी ९ पीहर। १० बिताऊँगी।

अरिवस दैउ जिआवत जाही । मरनु नीक तेहि जीव न चाही
दीन-वचन कह बहु-विधि रानी । सुनि कुबरी तिय-माया ठा
अस कस कहहु मानि मन ऊना[१] । सुखु सोहागु तुम्ह कहँ दिन
जेहि राउर अति अनभल ताका । सो पाइहि यहु फलु परिपाका[२]
जबतें कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर नींद न जामिनि[३]
पूंछेउँ गुनिन्ह[४] रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहिं यहु साँ
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ । हैं तुम्हरी सेवा-वस राऊ

दो०—परौं कूप तुअ वचन पर, सकौं पूत[५] पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥२

कुबरीं करि कबुली कैकेई । कपट-छुरी उर-पाहन टेई
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे । चरइ हरित-तृन बलि-पसु जैसे[६]
सुनत बात मृदु अन्त कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घो
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पं
दुइ बरदान भूप सन थाती[७] । माँगहु आजु जुड़ावहु छाती
सुतहिं राजु रामहिं बनबासू । देहु, लेहु सब सवति हुलासू

इंद्र की सहायता के लिये राजा दशरथ एक बार कैकेई को साथ ले से युद्ध करने गये। युद्ध में रथ की धुरी टूट गई। कैकेई ने अपने हाथ के सहारे रथ को ज्यों का त्यों खड़ा रक्खा। जब राजा विजय पाकर रथ से उतरे यह हाल देखा तब प्रसन्न हो, रानी से कहा कि तेरी मदद से जीत हुई है, तू वर मांग। कैकई ने कहा मेरे ये दो वर आप पर उधार रहे, जब चाहूंगी तब मांग लूं

१ दिगम होकर २ परिपाक, भोग ३ (यामिन) रात्रि ४ ज्योतिषि ५ पुत्र। ※ में रूपक कर्म धारय समास, रूपक अलंकार ६ बलि होने वाले पशु हरी हरी घास आदि पदार्थ दिये जाते हैं; वह खुश होकर खाता है, मगर के दुःखों का उसे जरा भी ज्ञान नहीं ७ धरोहर † परदत्त अलंकार:जहां वस्तु को देकर दूसरी ली जाय।

पति राम-सपथ जब करई। तब मांगेहु जेहि बचनु न टरई ॥
इ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानहु जीते ॥

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोप-गृह जाहु।
काजु सवाँरेहु सजग[1] सबु, सहसा[2] जनि पतिआहु ॥२३॥

बनिहि रानि प्रान-प्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
ाहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा[3] ॥
ाँ बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख-पूतरि[4] आली ॥
हु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोप भवन गवनी कैकेई ॥
बिपति बीजु बरषाऋतु चेरी। भुँइ भइ कुमति[*] कैकई केरी ॥
ाइ कपट-जलु अंकुर जामा[6]। बर[7] दोउ दल[8] दुख फल परिनामा ॥
ोप-समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई[†] ॥
ाउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई ॥

दो०—प्रमुदित पुर-नर-नारि सब, सजहिं सु-मंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निरगमहिं[9], भीर भूप-दरबार ॥ २४ ॥

बाल-सखा सुन हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं ॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूँछहिं कुसल-खेम मृदु-बानी ॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई ॥
को रघुबीर-सरिस[10] संसारा। सीलु-सनेहु निबाहनि-हारा ॥
जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ॥
'सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात एहु ओर निबाहू ॥
अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकय-सुता हृदय अतिदाहू ॥

---

१ चैतन्य २ शीघ्र ३ सहारा ४ आंख की पुतली, * सम अभेद-रूपक-अलङ्कार ५ 'मति ही कुत्सित' कर्मधारय, बहुव्रीहि में 'कुत्सित है मति जिसकी' ऐसा विग्रह होगा ६ जमा निकला ७ वरदान ८ पत्ते ९ जाते हैं। १० (सदृश) † नष्ट की

को न कु-संगति पाइ नसाई। रहै न नीच मतें चतुराई॥

दो० साँझ समय सानंद नृप, गयउ कैकेयी-गेह।
गवन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह॥* ॥२५॥

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयवस अगहुड़[1] परइ न पाऊ॥
सुर-पति वसइ बाँह बल जाके। नर-पति सकल रहहिं रुख ताके॥
सो सुनि तिय-रिस गयेउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे[2]। ते रति-नाथ[3] सुमन-सर[4] मारे॥
सभय[5] नरेसु प्रिया पहिं गयेऊ। देखि दसा दुख दारुन भयेऊ॥
भूमि-सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना॥
कुमतिहि कसि कुवेषता फावी। अन-अहिवातु सूच जनु भावी॥
जाइ निकट नृपु कह मृदुबानी। प्रान-प्रिया केहि हेतु रिसानी॥

छं० केहि हेतु रानि रिसानि-परसत पानि पतिहि निवारई[6],
मानहुँ सरोष-भुअंग-भामिनि[7] विषय भाँति निहारई।
दोउ वासना[8] रसना[9] दसन बर[10] मरम ठाहरु[11] देखई,
तुलसी नृपति भवितव्यतावस काम-कौतुक लेखई॥

सो० बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक-वचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गज-गामिनि निज कोप कर॥२६॥

अनहित[12] तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ-सिर केहि जम चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकारउँ देसू॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर-नारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू[13]। मन तव आनन-चंद-चकोरू॥

---

* उत्प्रेक्षा अलङ्कार १ आगे २ सहने वाले ३ कामदेव ४ फूलों के ५ डरते हुए † मानों भावी रणापे की सूचना है। ६ हाथ छूने से रोकती है। ७ ८ इच्छा ९ जीभ, १० वरदान ११ मर्मस्थान १२ बुरा १३ सुन्दर जंघा वाली

प्रिया, प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन[1] प्रजा सकल बस तोरें॥
जौं कछु कहउँ कपट करि तोहीं। भामिनि राम-सपथ-सत मोहीं॥
बिहँसि मागु मन-भावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुवेषू॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मति-मंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहुँ किरातिनि फंद॥२७॥

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी॥
भामिनि भयेउ तोर मनभावा। घरघर नगर अनंद-बधावा॥
रामहिं देउँ कालि जुवराजू। सजहि सु-लोचनि मंगल-साजू॥
दलकि[2] उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयेउ पाक बरतोरू[3]॥
ऐसिउ पीर बिहँसि तेइ गोई[4]। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई॥
लखी न भूप कपट-चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई॥
जद्यपि नीति-निपुन[5] नरनाहू। नारि-चरित जलनिधि-अवगाहू[6]॥
कपट-सनेहु बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुँहु मोरी॥

दो०—माँगु माँगु पै कहहुँ पिय, कबहुँ न देहु न लेहु॥
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु॥२८॥

जानेउं मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहिं कोहाव[7] परमप्रिय अहई॥
थाती राखि न माँगेहु काऊ। बिसरि गयेउ मोहि भोर सुभाऊ॥
झूठेहु हमहिं दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मांगि मकु लेहू॥
रघुकुल-रीति सदा चलि आई। प्रान जाँहु बरु, बचनु न जाई॥
नहिं असत्य-सम पातक[8] पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥

१ कुटुम्ब २ चौंकपड़ी ३ बारतोड़ ४ छिपाली ५ नीति में निपुण (सप्तमी तत्पु०) ६ अथाह समुद्र ७ रुठना ८ पाप।

आगे दीखि जरति रिस भारी । मनहु रोष-तरवारि उघारी[४]
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई । धरी कूबरी सान बनाई
लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवनु लइहि मोरा
बोले राउ कठिन करि छाती । बानी सविनय तासु सोहाती।
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती । भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी । सत्य कहौं करि संकर साखी
अवसि दूत मैं पठउब प्राता । ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई । देउँ भरत कहँ राजु बजाई

दो०—लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृपनीति ॥३२॥

राम-सपथ-सत कहौं सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें । तेहि तें परेउ मनोरथ छूछें[१]
रिस परिहरु अब मंगल साजू । कछु दिन गए भरत जुबराजू
एकहि बात मोहि दुखु लागा । बर दूसर असमंजस[२] माँगा
अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा । रिस परिहास कि साँचेहु साँचा
कहु तजि रोषु राम-अपराधू । सबु कोउ कहै रामु सुठि[३] साधू
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहि भयेउ संदेहू
जासु सुभाउ अरिहि-अनुकूला । सो किमि करिहि मातुप्रतिकूला

दो० प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिवेकु ।
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरत-राज-अभिषेकु ॥ ३३

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दी॰

---

४ नंगी—सावयव सम-अभेद-रूपक और उत्प्रेक्षा मिश्रित १ खाली २ चि॰
भरा हुआ ३ (सौष्ठव) श्रेष्ठ ।

कहौं सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥
समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवनु राम-दरस-आधीना॥
सुनि मृदुवचन कुमति असि जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥
कहै करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहिं राउरि-माया॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं॥
रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिला मोर भल ताका। तस फलु उन्हहिं देउँ करि साका॥

दो० होत प्रातु मुनिबेष धरि, जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिअ मन माहिं॥२४॥

असि कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष-तरंगिनि[१] बाढ़ी॥
पाप-पहार प्रगट भै सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई[२]॥
दोउ बर कूल[३] कठिन हठ धारा। भवँर कुबरी-बचन-प्रचारा॥
ढाहत[४] भूपरूप तरुमूला। चली बिपति-बारिधि अनुकूला॥
लखी नरेस बात सब साँची। तियमिसु मीचु[५] सीस पर नाची॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी। जनि दिन-कर कुल होसि कुठारी[६]॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। रामबिरह जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥

दो०—देखी ब्याधि असाधि[७] नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरतवचन राम राम रघुनाथ॥३५॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि[८] कलप-तरु मनहुँ निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनि पाठीनु[९] दीनु बिनु पानी॥

* व्याजस्तुति अलंकारः—(जहां निंदा में स्तुति और स्तुति में निंदा हो

१ कोप की नदी २ देखने से भय होता है ३ किनारा ४ गिराती है ५ मृत्यु ६ कुठारी ७ (असाध्य) ८ हथिनी ९ मछली।

पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहु घाय महँ माहुर[1] देई ।
जौं अंतहु अस करतबु रहेऊ । माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ ॥
दुइ कि होहिं एक समय भुआला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रौताई[2] ॥
छाड़हु बचन कि धीरजु धरहू । जनि अबला जिमि करुना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्य-संध[3] कहँ तृनसम बरनी ॥

दो०—मरमबचन[4] सुनि राउ कह कहु कछु दोष न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर ॥२६॥

चहत न भरत भूपतहिं भोरें । बिधिबस कुमति[5] बसी जिय तोरें ॥
सो सबु मोर पापपरिनामू । भयेउ कुठाहर[6] जेहि बिधि बामू ॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुनधाम राम-प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर रामबड़ाई ॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ । मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन-ओट बैठु मुहुँ गोई ॥
जब लगि जिअउँ कहौं कर जोरी । तब लगि जनु कछु कहसि बहोरी ॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नहारु[7] लागी ॥

दो०-परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदानु[8] ।
कपटसयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानि[9] ॥२७॥

राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू ॥
हृदय मनाव भोरु जनु होई । रामहिं जाइ कहै जनि कोई ॥
उदय करहु जनि रबि रघुकुलगुर । अवध बिलोकि सूल होइहि उर ॥

---

१ विष २ शूरता ३ सत्य प्रतिज्ञा वाले ४ हृदय को वेधने वाले । ५ बुरी मति (कर्मधारय) ६ कु-समय ७ नाहर या तांत ८ अंत सर्वनाश ९ तांत्रिक प्रयोग है—जगाते समय मौन धारण किया जाता है ।

भूपप्रीति कैकई कठिनाई। उभय अवध बिधि रची बनाई॥
बिलपत नृपहि भयेउ भिनुसारा[1]। बीना-बेनु संख-धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक।
मंगल सकल सुहाहिं न कैसें। सहगामिनिहिं[2] बिभूषन जैसें॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। राम-दरस-लालसा उछाहू॥

दो०-द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रबि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेखि॥ ३८॥

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काज रजायसु[3] पाई॥
गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद — बसेरा॥
पूँछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जयजीव बैठ सिर नाई। देखि भूपगति गयेउ सुखाई।
सोच बिकल बिबरन[4] महि परेऊ। मानहुँ कमलमूलु परिहरेऊ[5]।
सचिव सभीत सकै नहिं पूँछी। बोली असुभभरी सुभछूँछी।

दो—परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु॥
रामु रामु रटि भोरु किय कहै न मरमु[6] महीसु॥ ३९॥

आनहु रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई
चलेउ सुमंत्रु रायरुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी
सोच बिकल मग परै न पाऊ। रामहिं बोलि कहहिं का राऊ
उर धरि धीरजु गयेउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनुमारें

---

१ सवेरा २ सती (सती स्त्री को पति के साथ जलने से पहिले वस्त्राभूषण पहिनने पड़ते थे) ३ आज्ञा ४ शरीर काला पड़ा हुआ है। ५ जड़ उखड़ गई हो। ६ भे

समाधान करि सो सबही का। गयेउ जहाँ दिन कर-कुल-टीका ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पितासम लेखा ॥
निरखि वदनु कहि भूपरजाई। रघु-कुल-दीपहिं[१] चलेउ लेवाई ॥
राम कुभाँति[२] सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥

दो० जाइ देखि रघु-वंस-मनि, नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहु वृद्ध गजराजु ॥४०॥

सूखहिं अधर जरै सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ॥
सरुख[३] समीप देख कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥
करुनामय मृदु राम-सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ विचारी। पूँछी मधुरबचन महतारी ॥
मोहि कहु मातु तात-दुख-कारन। करिअ जतन जेहि होइ निवारन[४] ॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥
देन कहेन्हि मोहिं दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना ॥
सो सुनि भयेउ भूप उर सोचू। छाँड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू ॥

दो०—सुत-सनेहु इत वचनु उत, संकट परेउ नरेसु ।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु ॥४१॥

निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान, वचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु-लच्छ-समाना[५] ॥
जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखै धनुषविद्या वर वीरू[६] ॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू[७]। रामु सहज - आनंद - निधानू ॥

---

१ रघुकुल के दीपक २ बुरी तरह ३ क्रोधित ४ रोक ५ कोमल निशाना ६ श्रेष्ठवली ७ भानुकुल के भानु, अथवा भानुकुल में भानु ।

बोले वचन बिगत सब दूषन[1] । मृदु मंजुल जनु बागबिभूषन ॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़ भागी । जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ॥
तनय मातु-पितु-तोषनि-हारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि वन, सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितुआयसु बहुरि, संमत[2] जननी तोर ॥४२॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू ॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़समाजा ॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी । परिहरि अमृतु लेहिं बिषु माँगी ॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं । देखु बिचारि मातु मन माहीं ॥
अब एकु दुखु मोहिं बिसेषी । निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहिं महतारी ॥
राउ धीरु गुन - उदधि - अगाधू । भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ॥
जाते मोहि न कहत कछु राऊ । मोरि सपथ तोहि कह सतिभाऊ ॥

दो०—सहज सरल रघुवर-बचन, कुमति कुटिल करि जान ।
चलइ जोंक जल वक्रगति, जद्यपि सलिल समान ॥ ४३ ॥

रहसी[3] रानि रामरुख पाई । बोली कपटसनेह जनाई ॥
सपथ तुम्हार, भरत कै आना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥
तुम्ह अपराधु जोगु नहिं ताता । जननी-जनक-बंधु-सुख-दाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू । तुम्ह पितु-मातु-बचन-रत अहहू ॥
पितहिं बुझाइ कहहु, बलि, सोई । चौथेपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत[4] जेहिं दीन्हे । उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥

१ 'सब दूषण-विगत मृदु-मंजुल' यह सब वचन विशेष्य के विशेषण है । २ समर्थन की हुई ३ प्रसन्न हुई । ४ पुण्य (कर्त्ता कारक में) जिहि सुकृत से ......इसका निरादर.. आदि २ ।

लागहिं कुमुख वचन सुभ कैसे। मगह[1] गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहिं मातुवचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाए॥

दो०—गइ मुरछा, रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह॥
सचिव रामआगमन कहि, विनय समयसम कीन्ह॥ ४४॥

अवनिप[2] अकनि[3] रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरनु परत नृप रामु निहारे॥
लिये सनेहविकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक[4] फिरि पाई॥
रामहिं चितै रहेउ नरनाहू। चला विलोचन वारिप्रवाहू॥
सोकविवस कछु कहै न पारा[5]। हृदय लगावत बारहिं बारा॥
विधिहिं मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेसहि कहै निहोरी। विनती सुनहु सदा सिव मोरी॥
आसुतोष[6] तुम्ह अवढर[7] दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

दो०—तुम्ह प्रेरक[8] सब के हृदय, सो मति रामहिं देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सीलु सनेहु॥ ४५॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊँ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊँ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचनओट रामु जनि होहीं॥
अस मन गुनै राउ नहिं बोला। पीपर-पात-सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेम-बस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥
देस काल अवसर अनुसारी। बोले वचन विनीत विचारी॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई॥
अति-लघु बात लागि दुख पावा। काहु न मोहिं कहि प्रथम जनावा॥

---

१ मगधदेश २ (अवनि+प,) राजा ३ सुना ४ सांप ५ सकना। क्रिया अर्थ में ६ शीघ्र संतुष्ट होने वाले, ७ अटूट ८ प्रेरणा करने वाले।

। गोसाँइहि पूछेउँ माता। सुनि प्रसंगु[1] भए सीतल गाता॥

०—मंगलसमय सनेहबस, सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हिय, कहि पुलके प्रभुगात॥ ४६॥

। जनमु जगतीतल[2] तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।
रि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितुमातु प्रानसम जाकें॥
यसु पालि जनमफलु पाई। ऐहौं बेगिहिं होउ रजाई[3]॥
रा मातु सन आवौ माँगी। चलिहौं बनहिं बहुरि पग लागी।
त कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा॥
र व्यापि गइ बात सुतीछी[4]। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
नि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी[5]॥
जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ बिषादु[6] नहिं धीरजु होई॥

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं[7], सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ* करुन रस-कटकई, उतरी अवध बजाइ॥ ४७॥

लहिं माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
हि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥
ज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहति चीखा॥
टिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघु-बंस-बेनु-बन आगी॥
लव बैठि पेड़ु एहिं काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
दा रामु एहि प्रानसमाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥
त्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ॥
ज प्रतिबिंबु बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारिगति भाई॥

१ हाल २ पृथ्वी पर ३ आज्ञा ४ (तीक्ष्ण) ५ आगि ६ दुःख ७ चुचाते हैं
देखो परिशिष्ट स 'व'।

दो०—काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ ॥ ४८ ॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि[1] दीन्हा ॥
जो हठि भयेउ सकल दुख-भाजनु । अबलाबिबस ग्यानु गुनु गा अनु ॥
एक धरम-परमिति[2] पहिचानैं । नृपहि दोसु नहिं देहिं सयानैं ॥
सिबि-दधीचि-हरिचंद-कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत[3] कहहीं । एक उदास-भाय सुनि रहहीं ॥
कान मूँदि कर रद[4] गहि जीहा । एक कहहिं यह बात अलीहा[5] ॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे । राम भरत कहँ प्रान पियारे ॥
दो०—चंदु चवइ बरु अनलकन[6], सुधा होइ बिष तूल[7] ।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु, भरतु रामप्रतिकूल ॥ ४९ ॥

१ (बहुव्रीहि में अर्थ) २ धरम की मर्यादा । ३ सलाह से ४ दांत ५ असत्य
६ अग्नि-कण ७ विष तुल्य

*रघुवंश में राजा हरिश्चन्द्र बड़ा धर्मात्मा था । एक बार वशिष्ठजी ने विश्वामित्र से इसके दान और सत्य को सराहा तो उन्होंने परीक्षा करने को राज्य मांगा, और जब उसने दान दिया तब दक्षिणा मांगी परन्तु उसके पास कहां थी जो देता । यह कहा कि मैं नौकरी करके दूंगा । उन्होंने कहा हम यहां और भी न करने देंगे । तब राजा काशी में बिकने गये । जब विश्वामित्र दक्षिणा लेने पहुंचे तब राजा ने पुत्र स्त्री को वेच कर कुछ धन दिया और फिर शेष के लिये आपने चांडाल की नौकरी की और स्मशान पर कर उगाहना स्वीकार कर ऋषि की दक्षिणा चुकाई । कुछ काल में जब इसका पुत्र मरगया और उसकी स्त्री लड़के को स्मशान पर लेगई तो राजा ने इससे भी कर मांगा और आधीनता करने पर भी न माना । जब स्त्री ने दुखी हो आधा वस्त्र फाड़ने को हाथ किया उसी समय भगवान् ने आकर हाथ रोका और प्रसन्न हो पुत्र को जिला कर फिर अयोध्या के राज-सिंहासन पर बैठाया और अन्त में सब को मुक्ति दी ॥

बिधातहि दूषनु देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
ह[1] नगर सोचु सब काहू । दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥
धू कुलमान्य जठेरी[2] । जे प्रिय परम कैकई केरी ॥
देन सिख सीलु[3] सराही । बचन बानसम लागहिं ताही ॥
न मोहि प्रिय रामसमाना । सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ॥
राम पर सहजसनेहू । केहि अपराध आजु बनु देहू ॥
न कियेहु सवति आरेसू[4] । प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
ल्या अब काह बिगारा । तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥

—सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लषनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु कि भूँजब[5] भरत पुर नृपु कि जिइहिं बिनु राम ॥५०॥

बिचारि उर छाड़हु कोहू । सोक कलंक कोठि[6] जनि होहू ॥
ाहिं अवसि देहु जुबराजू । कानन काह राम कर काजू ॥
न रामु राज के भूखे । धरमधुरीन बिषयरस रूखे ॥
ुह बसहु रामु तजि गेहू । नृप सन अस बर दूसर लेहू ॥
नाहिं लगिहहु कहें हमारें । नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारें ॥
परिहास[7] कीन्हि कछु होई । तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥
सारस सुत कानन जोगू । काह कहहि सुनि तुम्ह कहँ लोगू ॥
ु बेगि सोइ करहु उपाई । जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई ॥

१ खलबली २ बड़ी बूढ़ी ३ मुरव्वत ४ परेखा ५ भोगेंगे ६ खाई, सीमा ।
ती ।

छंद—एहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पा
हठि फेरु रामहिं जात बन जनि बात दूसरि चा
जिमि भानु बिनु दिनु,प्रान बिनु तनु,चंद बिनु जिमि जा
तिमि अवध तुलसीदासप्रभु बिनु समुझि धौं जिय भा

सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूवरी[2] ॥५

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अ
राजु करत येह दैव बिगोई[3]। कीन्हेसि अस जस करै न
एहि बिधि बिलपहिं पुर-नर-नारी। देहिं कुचालिहि कोटिक
जरहिं बिषमजर, लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आ
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जल-चर-गन सूखत
अतिबिषाद बस लोग लोगाईं। गए मातु पहिं रामु गो
मुखु प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै

दो०— नवगयंदु[4] रघुबीरमनु, राजु अलान[5] समान।
छूट जानि बनगवनु सुनि, उर अनंदु अधिकान ॥५१

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु-पद नायेउ मा
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषनबसन निछावरि की
बार बार मुख चुंबति माता। नयन-नेहजलु पुलकित गा
गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहा
प्रेमुप्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक[6] धनदपदबी[7] जनु

१ गति २ कुबड़ी ३ (भंडबिगोया) चाने लगाव किया ४ नया
५ हाथी बाँधने की साँकर ६ ग़रीब ७ कुबेर का ...

सुंदर बदनु निहारी । बोली मधुर बचन महतारी ॥
तात जननी बलिहारी । कबहिं लगन मुद-मंगलकारी ॥
सील सुख सींव सुहाई । जनमलाभ कै अवधि अघाई[1] ॥
—जेहि चाहत नरनारि सब, अति आरत[2] एहि भाँति ।
जिमि चातक चातकि तृषित, बृष्टि सरद रितु स्वाति ॥५३॥
जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
समीप तब जायेहु भैया । भै बड़ि बार[3] जाइ बलि[4] मैया ।
चन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह-सुर-तरु[5] के फूला ॥
करंद[6] भरे स्त्रियमूला[7] । निरखि राम-मनु-भवँरु न भूला* ॥
धुरीन[8] धरमगति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदु-बानी ॥
दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
तु देहि मुदित मन माता । जेहिं मुदमंगल कानन जाता ॥
सनेहवस डरपसि भोरें । आनँदु अंब अनुग्रह तोरें ॥
—बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु-बचन-प्रमान ।
आइ पाय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान ॥५४॥
बिनीत मधुर रघुबर के । सर[9] सम लगे मातुउर करके[10] ॥
सुखि सुनि सीतल बानी । जिमि जवास परे पावस पानी ॥
न जाइ कछु हृदय-बिषादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि-नादू[11] ॥
सजल तन थरथर काँपी । माँजहि[12] खाइ मीन जनु मापी ॥
धीरजु सुतबदनु निहारी । गदगद-बचन कहति महतारी ॥
पितहि तुम्ह प्रानपियारे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥

१ पूर्ण २ दुखी ३ देर ४ बलिहारी ५ स्नेह रूपी कल्प वृक्ष । ६ ...रस ७ ...ण की मूल * विशेषोक्ति अलंकार—प्रबल हेतु होने पर भी कार्य न हो । ८ धरम- ...—धर्म को आगे से खींचने वाले । ९ बाण १० करकना क्रिया का सामान्य ...हा रूप ११ सिंह-ध्वनि १२ पहले बरसाती प्रवाह में उत्पन्न हुए झाग ।

राजु देन कहँ सुभ दिन साधा[1] । कहेउ जान बन केहि
तात सुनावहु मोहि निदानू[2] । को दिन-कर-कुल भयेउ

दो०– निरखि रामरुख सचिवसुत, कारनु कहेउ बुझाइ ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक[4] जिमि दसा बरनि नहिं

राखि न सकै न कहि सक जाहू । दुहूँ भाँति उर दारुन
लिखत सुधाकर[5] गा लिखि राहू । बिधिगति बाम[7] सदा
धरम सनेह उभय मति घेरी । भै गति सांप छुछुंदरि
राखौं सुतहि करौं अनुरोधू । धरम जाइ अरु
कहौं जान बन तौ बड़ि हानी । संकट-सोच-बिबस भै
बहुरि समुझि तियधरमु सयानी । रामु भरतु दोउ सुत सम
सरल सुभाउ राममहतारी । बोली बचन धीर धरि
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । पितुआयसु सब धरम क

दो०—राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु

जौं केवल पितु-आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि
जौं पितुमातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत-अवध-स
पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरनसरोरुह
अंतहु उचित नृपहि बनबासू । बय[9] बिलोकि हिय होइ
बड़भागी बनु, अवध अभागी । जो रघु-बंस-तिलक तुम्ह
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदय होइ
पूत परमप्रिय तुम्ह सबही के । प्रान प्रान के जीवन जी
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैठि प

१ निश्चय किया, २ हेतु ३ अग्नि ४ गूंगे की भांति ५ चन्द्रमा ६ छुछूंदर को चूहा समझ पकड़ ले, यदि खाय तो मरे और उगले तो अ ८ तिलक ९ आयु—*आयु के अन्तिम भाग में राजा वाणप्रस्थ लेकर बन

दो०—यह बिचारि नहिं करौं हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि[1], सुरति बिसरि जनि जाइ॥५७॥

पितर सब तुम्हहिं गोसाईं। राखहु पलक नयन की नाईं॥
धि अंबु[2] प्रियपरिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना॥
र बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहिं जिअत जेहि भेंटहु आई॥
हु सुखेन[3] बनहिं बलि जाऊँ। करि अनाथ जन-परिजन-गाऊँ॥
कर आजु सुकृतफल बीता। भयेउ करालुकालु बिपरीता॥
विधि बिलपि चरन लपटानी। परमअभागिनि आपुहि जानी॥
रुन-दुसह-दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाइ बिलापकलापा॥
म उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदुबचन बहुरि समुझाई॥
दो०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु-पद-कमल-जुग, बंदि बैठि सिरु नाइ॥५८॥

न्हि असीस सासु मृदुबानी। अतिसुकुमारि देखि अकुलानी॥
ठि नमित मुख[4] सोचति सीता। रूपराशि पति-प्रेम-पुनीता[5]॥
लन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना॥
चारु चरननख लेखति धरनी। नूपुर मुखर[6] मधुर कबि बरनी॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं॥
मंजुबिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राममहतारी॥
तात सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सासु-ससुर परिजनहिं पियारी॥
दो०—पिता जनक भूपालमनि, ससुर भानु-कुल-भानु[8]।
पति रबि कुल-कैरव[7]-बिपिन-बिधु, गुन-रूप-निधानु॥५९॥

---

१ बलिहारी जाऊं २—१४ वर्ष की सीमा तो जल है ३ सुख पूर्वक ४ नीचा मुँह करके ५ पति-प्रेम द्वारा पवित्र ६ बिछुओं की ध्वनि। ७ कुमोदिनी ८ भानुकुलके भानु, षष्ठी। रवि का कुल, रविकुल—षष्ठी तत्पु० कैरवों का विपिन, कैरव-विपिन; ष० त० रविकुलरूपी कैरवों का विपिन, रविकुल-कैरव विपिन रूपक कर्मधारय; रवि-कुल-कैरव विपिन विधु—रविकुलरूपी कैरवों के विपिन के विधु—ष० त०

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूपरासि गुन सालु सुहा(ई)
नयनपुतरि करि[१] प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं ला(ई)
कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली[२]। सींचि सनेहसलिल[३] प्र...
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह ...
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा[४]। सिय न दीन्ह पगु अवनि[५] ...
जिअनमूरि[६] जिमि जोगवत[७] रहऊँ। दीपबाति नहिं टारन कहऊँ
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा
चंद-किरन-रस-रसिक चकोरी‡। रबिरुख नयन सकै किमि जोरी।

दो०—करि, केहरि, निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिषबाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि॥६०॥

बनहित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी*
पाहन कृमि[८] जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन का(ऊ)
कै तापसतिय काननजोगू। जिन्ह तपहेतु तजा सब भोगू
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि[९] देखि डराती
सुर-सर-सुभग बनज-बन-चारी। डाबर-जोग कि हंसकुमारी
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई
जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी

---

१ भांति २ लाड़ किया ३ पानी ४ पलँग-पीठ गोद और हिंडोरा तजि ५ धर ६ संजीवनी बूटी ७ देखती। ‡चन्द-किरण-रस-रसिक—(चकोरी का विशेषण) ष तत्पु० *विषय-सुख से रहित-पंचमी तत्पु० ८ पहाड़ी कीड़ा ९ चित्र में लिखित-क

दो०—कहि प्रियवचन विवेक-मय, कीन्ह मातु-परितोष[1]।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन-दोष[2] ॥६१॥
मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं ॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥
आपन मोर नीक जो चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू ॥
आयसु मोरि सासुसेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमबिकल मतिभोरी[3] ॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदु बानी ॥
कहौं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि[4] मातुहित राखौं तोही ॥
दो०—गुरु-स्रुति-संमत[5] धरमफलु, पाइअ बिनहिं कलेस।
हठबस सब संकट सहे, गालव* नहुष नरेस‡ ॥ ६२ ॥
मैं पुनि करि प्रवान[6] पितुबानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदर सिखवनु सुनहु हमारा ॥

---

*गालव मुनि विश्वामित्र से जब विद्या पढ़ चुके तब गुरूजी से दक्षिणा माँगने के लिये हठ किया। उन्होंने क्रोधकर ८०० श्यामकर्ण घोड़े मांगे। बड़े कष्ट से ६०० मिले २०० की कमी रही।

‡ एक समय राजा नहुष को इंद्रासन का पद मिल गया था। तब इंद्राणी से उसने विवाह करने की इच्छा प्रकट की। तब राजा को उसने कहला भेजा कि पालकी में बैठ, ऋषियों से उठवाकर आओ। राजा ने ऋषियों से पालकी उठवाई और सर्प सर्प कहा, तब अगस्त्यजीने पालकी छोड़ शाप दिया कि तू सर्प होजा, सो राजा नहुष सर्प होगया।

१ संतुष्ट २ गुन और दोष, गुन-दोष, (द्वन्द्व) विपिनि-गुन दोष, विपिन के गुन और दोष (षष्ठीतत्पु०) ३ भोरी है मति जिस की (बहुव्रीहि) ४ सुमुखि, सुंदर है मुख जिसका (बहुव्रीहि) ५गुरु और श्रुति से (द्वारा) सम्मत (करण कारक) ६ पूर्ण।

जौं हठ करहु प्रेमवस वामा[1] । तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
कानन कठिन भयंकर भारी । घोर घामु, हिम, बारि, बयारी ॥
कुस कंटक मग काँकर नाना । चलत पयादेहिं बिनु पदत्राना[2] ॥
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥
कंदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध[3] न जाहिं निहारे[4] ॥
भालु बाघ वृक[5] केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥

दो०—भूमिसयन वलकलबसन,[6] असनु[7] कंद-फल-मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबइ समय अनुकूल ॥६३॥

नरअहार रजनीचर चरहीं । कपटबेष बिधि कोटिक करहीं ॥
लागै अति पहार कर पानी । बिपिन-बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा । निसिचर-निकर[8] नारि-नर-चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि[9] आएँ । मृगलोचनि तुम्ह भीरु[10] सुभाएँ ॥
हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू । सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू ॥
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवनपयोधि मराली ॥
नव-रसाल-बन बिहरनसीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चंदबदनि दुखु कानन भारी ॥

दो०—सहज सुहृद-गुरु स्वामि-सिख, जो न करै सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि ॥ ६४ ॥

सुनि मृदुबचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भै कैसें* । चकइहि सरदचंद निसि जैसें ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥

---

१ पाठान्तर 'भामिनि' १ री, (उदासीनता की दशा का सम्बोधन) २ जूता ३ गहरे ४ देखने से भय मालूम होता है । ५ भेड़िया ६ वस्त्र ७ भोजन ८ राक्षसों का समूह ९ धन १० डरपोक ।

* विरोधाभास अलङ्कार

बरबस रोकि बिलोचनबारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी[1] ॥
लागि सासुपग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय[2] मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परमहित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय-बियोग-सम दुखु जग नाहीं ॥

दो०—प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरकसमान ॥६५॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद-समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनि[3] हुँते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुरराजू। पतिबिहीन सबु सोकसमाजू ॥
भोग रोगसम, भूषन भारू। जम-जातना[4]-सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदनु[5] निहारे ॥

दो०—खग मृग परिजन नगर बनु बलकल बिमल दुकूल[6] ॥
नाथ साथ सुर-सदन सम परनसाल[7] सुखमूल ॥६६॥

बनदेवीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-सम सारा[8] ॥
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोजतुराई ॥
कंद मूल फल अमिअ[9] अहारू। अवध-सौध-सत सरिस पहारू* ॥
छिनुछिनु प्रभु-पद-कमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
बनदुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे ॥

---

१ सीताजी, २ ढीठता ३ सूर्य्य ४ यम दण्ड के सदृश ५ (विधुवदन, विमल-विधु-वदन, सरद-विमल-विधु-वदन) इस प्रकार विग्रह है ६ रेशमी वस्त्र ७ झोंपड़ी। ८ सार सम्हार ९ (अमृत) *पहारु अवध-सौध-(महल) सत-सरिस ?

प्रभु-वियोग-लव-लेस-समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥
अस जिय जानि सुजान-सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि ॥
विनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर-अंतर-जामी ॥

दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहि प्रान ।
दीनबंधु सुंदर सुखद, सील-सनेह-निधान ॥ ६७ ॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरनसरोज निहारी ॥
सबहि भाँति पिय-सेवा करिहौं । मारगजनित सकल स्रम हरिहौं ॥
पाँय पखारि बैठ तरुछाहीं । करिहौं बाउ मुदित मन माहीं ॥
स्रम-कन-सहित[1] स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें ॥
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी[2] । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदुमूरति जोही[3] । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभुसंग मोहि चितवनिहारा । सिंघवधुहि जिमि ससक[4] सिआरा ॥
मैं सुकुमारि नाथ वनजोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू‡ ॥

दो०—ऐसेउ वचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु-विषम-वियोग-दुखु, सहिहहिं पाँवर[5] प्रान ॥६८॥

अस कहि सीय बिकल भै भारी । बचनवियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति-जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपाल भानु-कुल-नाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहिं विषाद कर अवसरु आजू । बेगि करहु बन-गवन-समाजू ॥
कहि प्रियवचन प्रिया समुझाई । लगे मातुपद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजादुख मेटब आई । जननी निठुर[6] बिसरि जनि जाई ॥

---

१ पसीने की बूंदों सहित २ बिछाकर ३ देखकर ४ खरहा ५ नीच ६ (निठुर)

‡ काकु वक्रोक्ति अलंकार, जहां ध्वनि से उलटा अर्थ निकले, जैसे—मैं सुकुमारि और आप वन के योग्य ! अर्थात नहीं ।

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी । देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदनबिधु जोइहि ॥

दो०—बहुरि बच्छु[1] कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय हरषि निरषिहौं गात ॥ ६९॥

लखि सनेह कातरि[2] महतारी । बचनु न आव बिकल भै भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह विधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥
तब जानकी सासुपग लागी । सुनिय माय मैं परम अभागी ॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
तजब छोभु[3] जनि छाँड़िअ छोहू[4] । करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥
सुनि सियबचन सासु अकुलानी । दसा कवनि विधि कहौं बखानी ॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु[5] तुम्हारा । जब लागि गंग-जमुन जल-धारा ॥

दो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार ॥
चली नाइ पदपदुम सिरु, अति हित बारहिं बार ॥ ७० ॥

समाचार जब लछिमन पाए । ब्याकुल बिलष बदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अतिप्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा । सब सुखु सुकृतु सिरान[6] हमारा ॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु करजोरें । देह गेह[7] सब सन तृन तोरें ॥
बोले बचनु राम नयनागर[8] । सील-सनेह-सरल-सुख-सागर ॥

---

१ (वत्स) २ सनेह से कातर वा सनेह में कातर, इस प्रकार तृतीया वा सप्तमी तत्पु० दोनों हो सकते हैं ३ दुःख ४ कृपा ५ सौभाग्य ६ समाप्त हुआ ७ (गृह) ८ नीति में चतुर ।

तात प्रेमबस जनि कदराहू । समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, न तरु जनमु जग जाय ॥७१॥

अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई । करहु मातु-पितु-पद-सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदनु नाहीं । राउ बृद्ध, मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा । होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहुँ परै दुसह-दुख-भारू[१] ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात असि नीति बिचारी । सुनत लषनु भये ब्याकुल भारी ॥
सिअरे बचन सूखि गए कैसे । परसत तुहिन[२] तामरस[३] जैसे ॥

दो०—उतरु न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ ॥ ७२ ॥

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं । लागि अगम[४] अपनी कदराईं[५] ॥
नरबर धीर धरम धुर-धारी । निगम नीति कहुँ ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला । मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानौं काहू । कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू[६] ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई[७] । प्रीति प्रतीति निगम निजु[८] गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर-अंतरजामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति-भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन-क्रम-बचन चरनरत होई । कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥

---

१ घोर दुःख का बोझ २ पाला ३ कमल ४ दुस्तर ५ कातरता ६ विश्वास करो ७ सम्बन्ध ८ स्वयं

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदुबचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़, गइ बड़ि हानी॥
हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि-पग नायेउ माथा। मनु रघुनंदन-जानकि साथा॥
पूँछे मातु मलिन मन देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी॥
गई सहमि[1] सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव[2] जनु चहुँ ओरा॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग, बिधि, कहहि कि नाहीं॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय-रूपु-सुसीलु सुभाउ।
नृपसनेह लखि धुनेउ सिरु, पापिनि दीन्ह कुदाउ[3] ॥७४॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम-निवासू। तहँई दिवसु जहँ भानुप्रकासू॥
जौं पै सीय-रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साँई। सेइअहि सकल प्रान की नाँई॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहि राम के नातें॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवनुलाहू[4]॥

दो०—भूरि भागभाजनु[5] भयेहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छलु कीन्ह राम-पद ठाउँ॥ ७५॥

---

१ सन्नाटे में आगई, दंग रह गई २ अग्नि ३ कुघात ४ जीवन का लाभ।
५ बड़े भाग्य-शाली

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघु-पति-भगतु जासु सुत होई।
नतरु[1] बाँझ भलि, बादि[2] बिआनी। रामबिमुख सुत तें हितहानी॥
तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर यह फल एहू। राम–सीय–पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा[3] मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु-सिय जासू॥
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करहु इहै उपदेसू॥

छंद—उपदेसु यहु जेहि तात तुम्हरे, रामसिय सुख पावहीं।
पितु-मातु-प्रिय-परिवार-पुर-सुख-सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी-प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई॥
रति[4] होउ अबिरल[5] अमल[6] सिय-रघु-बीर-पद नित नित नई॥

सो०—मातुचरनु सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदय॥
बागुर[7] बिषम[8] तोराइ मनहुँ भाग मृगु भागबस[9] ॥७८॥

गए लषनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम-सिय-चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए॥
कहहिं परसपर पुर नर-नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥
तन कृस[10] मन दुखु, बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥
कर मीजहिं, सिरु धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥

१ नहीं तो २ व्यर्थ ३ ईर्षा ४ प्रीति ५ अनुपम ६ पवित्र ७ फदा ८ कठिन ९ भाग्य से १० दुर्बल।

भै बड़ि भीर भूप-दरबारा । बरनि न जाइ बिखादु अपारा ॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे ॥
सियसमेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयेउ भूमिपति भारी ॥

दो०—सीयसहित सुत सुभग[1] दोउ, देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेहबस, राउ लेइ उर लाइ ॥ ७७ ॥

कै न बोलि बिकल नरनाहू । सोकजनित उर दारुन दाहू ॥
इ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
तु असीसु आयसु मोहि दीजै । हरषसमय बिसमउ कत कीजै ॥
त किए प्रिय प्रेमप्रमादू[2] । जसु जग जाइ, होइ अपबादू[3] ॥
ुनि सनेहबस उठि नरनाहाँ । बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥
ुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं । राम चराचरनायक अहहीं[4] ॥
ुभ अरु असुभ करम-अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदय बिचारी ॥
रै जो करम पाव फलु सोई । निगम-नीति असि कह सबु कोई ॥

दो०—औरु करै अपराध कोउ, और पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंतगति को जग जानै जोगु ॥ ७८ ॥

ाय रामराखन हित लागी । बहुत उपाय किए छल त्यागी ॥
लखी रामरुख, रहत न जाने । धरम-धुरंधर धीर सयाने ।
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अतिहित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए । सासु ससुर पितु सुख समुझाए ॥
सियमन रामचरन-अनुरागा । घरु न सुगमु, बनु बिषमु न लागा ॥
औरउ सबहि सीय समुझाई । कहि कहि बिपिन-बिपति-अधिकाई ॥
सचिवनारि गुरुनारि सयानी । सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
कहँ तौ न दीन्ह बनवासू । करहु जो कहहिं ससुर-गुर-सासू ॥

१ सुन्दर २ प्रेम से भूल ३ अपयश ४ चर और अचर सृष्टि के स्वामी हैं ।

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि*
सरद-चंद चंदनि लगत, जनु चकई आकुलानि ॥ ७६ ॥
सीय सकुच वस उतरु न देई। सो सुनि तमकि[१] उठी कैकेई॥
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी॥
नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुवीरा। सील सनेह न छाँड़िहि भीरा॥
सुकृत सुजसु परलोक नसाऊ। तुम्हहिं जान वन कहिहि न काऊ॥
अस विचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननिसिख सुनि सुखु पावा॥
भूपहि वचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान[२] अभागे॥
लोग विकल, मुरछित नरनाहू। काह करिअ, कछु सूझ न काहू॥
रामु तुरत मुनिवेषु बनाई। चले जनक जननी सिरु नाई॥
दो०—सजि बन-साजु-समाजु सब, बनिता[३]-बंधु-समेत।
बंदि विप्र-गुर-चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥८०॥
निकसि वसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग विरहदव[४] दाढ़े[५]॥
कहि प्रिय वचन सकल समुझाए। विप्रवृंद रघुवीर बोलाए॥
गुर सन कहि वरषासन[६] दीन्हे। आदर दान विनयवस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥
दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरहिं सौंपि बोले कर जोरी॥
सब के सार सँभार गोसाईं। करवि जनक जननी की नाईं[७]॥
बारहिं बार जोरि जुगपानी[८]। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥
दो०—मातु सकल मोरे विरह जेहिं न होहिं दुख-दीन॥
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुरजन[९] परमप्रवीन ॥ ८१ ॥

---

*तृतीय विषम अलंकार—जहां कारण के गुण से कार्य का गुण या कारण की क्रिया से कार्य की क्रिया विरुद्ध हो।

१ कोधित हो २ (प्रयाण) गमन ३ स्त्री ४ वियोग की आग ५ जले हुए ६ (वरष+अशन) एक वर्ष का भोजन ७ भांति ८ (युग पाणि) ६ नगर-वासी।

विधि राम सबहिं संसुझावा। गुरु-पद-पदुम[1] हरषि सिरु नावा॥
ति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥
चलत अति भयेउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरतनादू॥
ुन लंक, अवध अति सोकू। हरष बिषाद[2]-बिबस सुरलोकू॥
मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्र कहन अस लागे॥
चले बन प्रान न जाहीं[3]। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥
तें कवन व्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजिहिं तनु प्राना॥
धरि धीर कहे नरनाहू। लै रथ संग सखा तुम्ह जाहू॥

०—सुठि[4] सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि॥
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गए दिन चारि॥ ८२॥

नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध[5] दृढ़ब्रत रघुराई॥
तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस-किसोरी॥
सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोर सिख अवसरु पाई॥
ु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥
ृगृह कबहुँ, कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
ह बिधि करेहु उपायकदंबा[6]। फिरइ त होइ प्रानअवलंबा॥
हिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भए बिधि बामा॥
त कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लषनु सिअ आनि देखाऊ॥

ो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु, अति बेग बनाइ।
गयेउ जहाँ बाहेर नगर, सीयसहित दोउ भाइ॥८३॥

सुमंत नृपबचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
ढ़ि रथ सीयसहित दोउ भाई। चले हृदय अवधहि सिरु नाई॥

---

१ (पद-पदुम, गुरु-पद-पदुम) २ विषाद अयोध्या की दशा देख कर और हर्ष
ने शत्रु राक्षसों के नष्ट होने की आशा से। ३ प्रबल कारण होने पर भी कार्य
हो (विशेषोक्ति अलंकार) ४ बहुत ५ सत्य प्रतिज्ञा वाले ६ समूह, अनेक।

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि*
सरद-चंद चंदनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥ ७९ ॥

सीय सकुच वस उतरु न देई । सो सुनि तमकि[1] उठी कैकेई
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदु बानी
नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुवीरा । सील सनेह न छाँड़िहि भीरा
सुकृत सुजसु परलोक नसाऊ । तुम्हहिं जान वन कहिहि न काऊ
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननिसिख सुनि सुखु पावा
भूपहि वचन बानसम लागे । करहिं न प्रान पयान[2] अभागे
लोग बिकल, मुरछित नरनाहू । काह करिअ, कछु सूझ न काहू
रामु तुरत मुनिवेषु बनाई । चले जनक जननी सिरु नाई

दो०—सजि वन-साजु-समाजु सव, बनिता[3]-बंधु-समेत ।
बंदि बिप्र-गुर-चरन प्रभु, चलेकरि सवहि अचेत ॥८०॥

निकसि वसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े । देखे लोग बिरहदव[4] दाढ़े[5]
कहि प्रिय वचन सकल समुझाए । बिप्रवृंद रघुवीर बोलाए
गुर सन कहि वरषासन[6] दीन्हे । आदर दान बिनयवस कीन्हे
जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे
दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरहिं सौंपि बोले कर जोरी
सब के सार सँभार गोसाईं । करबि जनक जननी की नाईं[7]
बारहिं बार जोरि जुगपानी[8] । कहत रामु सब सन मृदु बानी
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तें रहै भुआल सुखारी

दो०—मातु सकल मोरे बिरह जेहिं न होहिं दुख-दीन ॥
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुरजन[9] परमप्रवीन ॥ ८१ ॥

---

*तृतीय विषम अलंकार—जहां कारण के गुण से कार्य का गुण या का की क्रिया से कार्य की क्रिया विरुद्ध हो ।

१ क्रोधित हो २ (प्रयाण) गमन ३ स्त्री ४ वियोग की आग ५ जले ६ (वरष+अशन) एक वर्ष का भोजन ७ भांति ८ (जुग पाणि) ९ नगर-वास

सोहहिं बिधि राम सबहिं ससुभावा। गुर-पद-पदुम[1] हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥
राम चलत अति भयेउ विषादू। सुनि न जाइ पुर आरतनादू॥
कुसगुन लंक, अवध अति सोकू। हरष विषाद[2]-बिबस सुरलोकू॥
गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्र कहन अस लागे॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं[3]। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥
एहि तें कवन व्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहै नरनाहू। लै रथ संग सखा तुम्ह जाहू॥

दो०—सुठि[4] सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि॥
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गए दिन चारि॥ ८२॥

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध[5] दृढ़ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस-किसोरी॥
जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोर सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥
पितुगृह कबहुँ, कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपायकदंबा[6]। फिरइ त होइ प्रानअवलंबा॥
नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भए बिधि बामा॥
अस कहि मुरछि परा महि राऊ। राम लषनु सिअ आनि देखाऊ॥

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु, अति बेग बनाइ।
गयेउ जहाँ बाहेर नगर, सीयसहित दोउ भाइ॥ ८३॥

तब सुमंत नृपबचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीयसहित दोउ भाई। चले हृदय अवधहि सिरु नाई॥

---

१ (पद-पदुम, गुरु-पद-पदुम) २ विषाद अयोध्या की दशा देख कर और हर्ष अपने शत्रु राक्षसों के नष्ट होने की आशा से। ३ प्रबल 'कारण होने पर भी कार्य न हो (विशेषोक्ति अलंकार) ४ खूब, ५ सत्य प्रतिज्ञा वाले ६ समूह, अनेक।

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि*
सरद-चंद-चंदनि लगत, जनु चकई आकुलानि ॥ ७९ ॥
सीय सकुच बस उतरु न देई । सो सुनि तमकि[1] उठी कैकेई ॥
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदु बानी ॥
नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छाँड़िहि भीरा ।
सुकृत सुजसु परलोक नसाऊ । तुम्हहिं जान बन कहिहि न काऊ ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननिसिख सुनि सुखु पावा
भूपहि बचन बानसम लागे । करहिं न प्रान पयान[2] अभागे ॥
लोग बिकल, मुरुछित नरनाहू । काह करिअ, कछु सूझ न काहू ।
रामु तुरत मुनिबेषु बनाई । चले जनक जननी सिरु नाई ।
दो०—सजि बन-साजु-समाजु सब, बनिता[3]-बंधु-समेत ।
बंदि बिप्र-गुर-चरन प्रभु, चलेकरि सबहि अचेत ॥८०॥
निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े । देखे लोग बिरहदव[4] दाढ़े[5] ।
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए । बिप्रबृंद रघुबीर बोलाए ।
गुर सन कहि बरपासन[6] दीन्हे । आदर दान बिनयबस कीन्हे ।
जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ।
दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरहिं सौंपि बोले कर जोरी ।
सब कै सार सँभार गोसाईं । करबि जनक जननी की नाईं[7] ।
बारहिं बार जोरि जुगपानी[8] । कहत रामु सब सन मृदु बानी
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तें रहै भुआल सुखारी
दो०—मातु सकल मोरे बिरह जेहिं न होहिं दुख-दीन ॥
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुरजन[9] परमप्रबीन ॥ ८१ ॥

---

*तृतीय विषम अलंकार—जहां कारण के गुण से कार्य का गुण वा कारण की क्रिया से कार्य की क्रिया विरुद्ध हो ।

१ क्रोधित हो २ (प्रयाण) गमन ३ स्त्री ४ वियोग की आग ५ जले हुए ६ (वर्ष+असन) एक वर्ष का भोजन ७ भांति ८ (युग पाणि) ९ नगर-वासी

विधि राम सबहिं समुझावा। गुर-पद-पदुम[1] हरषि सिरु नावा॥
गति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥
चलत अति भयेउ विषादू। सुनि न जाइ पुर आरतनादू॥
गुन लंक, अवध अति सोकू। हरष बिषाद[2]-विवस सुरलोकू॥
मुरछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्र कहन अस लागे॥
चले बन प्रान न जाहीं[3]। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥
तें कवन व्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥
धरि धीर कहे नरनाहू। लै रथ संग सखा तुम्ह जाहू॥

दो०—सुठि[4] सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि॥
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गए दिन चारि॥ ८२॥

नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध[5] दृढ़व्रत रघुराई॥
तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस-किसोरी॥
सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोर सिख अवसरु पाई॥
सु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥
तुगृह कबहुँ, कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
हि विधि करेहु उपायकदंबा[6]। फिरइ त होइ प्रानअवलंबा॥
हिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भए बिधि बामा॥
स कहि मुरछि परा महि राऊ। राम लषनु सिय आनि देखाऊ॥

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु, अति बेग बनाइ।
गयेउ जहाँ बाहेर नगर, सीयसहित दोउ भाइ॥८३॥

ब सुमंत नृपबचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
ढ़ि रथ सीयसहित दोउ भाई। चले हृदय अवधहि सिरु नाई॥

---

१ (पद-पदुम, गुरु-पद-पदुम) २ विषाद अयोध्या की दशा देख कर और हर्ष
पने शत्रु राक्षसों के नष्ट होने की आशा से। ३ प्रबल कारण होने पर भी कार्य
हो (विशेषोक्ति अलंकार) ४ सुन्दर ५ सत्य प्रतिज्ञा वाले ६ समूह, अनेक।

चलत रामु लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लागे सा
कृपासिंधु बहु बिधि समुझावहिं । फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि
लागति अवध भयावनि भारी । मानहुँ कालराति[1] अँधियारी
घोर[2] जंतुसम पुर – नर – नारी । डरपहिं एकहिं एक मि
घर मसान[3] परिजन जनु भूता । सुत हित मीत मनहुँ जम
बागन्ह बिटप[4] बेलि कुम्हिलाहीं । सरित सरोवर देखि न ज

दो०—हय[5] गय[6] कोटिन्ह केलिमृग[7], पुरपसु चातक मोर ।
पिक[8] रथांग[9] सुक सारिका, सारस हंस चकोर ॥ ८४

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े । जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि का
नगरु सकल बनु गह्वर[10] भारी । खग मृग बिपुल सकल नरना
बिधि कैकेई किरातिनि कीन्हीं । जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि
सहि न सके रघु-बर-बिरहागी । चले लोग सब ब्याकुल भागी
सबहि बिचारु कीन्ह मन माहीं । राम लषन सिय बिनु सुखु
जहाँ रामु तँह सबुइ[11] समाजू । बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू
चले साथ अस मंत्र दृढ़ाई । सुरदुर्लभ[12] सुखसदन बिहा
राम-चरन-पंकज प्रिय जिन्हहीं । बिषय भोग बस करहिं कि तिन्ह

दो०—बालक वृद्ध बिहाइ गृह, लगे लोग सब साथ ।
तमसा-तीर निवासु किय, प्रथम दिवसु रघुनाथ ॥८५॥

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी । सदय हृदय दुखु भयेउ बिसेखी
करुनामय रघुनाथ गोसाईं । बेगि पाइअहिं पीर पराई
कहि सप्रेम मृदुबचन सुहाए । बहु बिधि राम लोग समुझाए
किए धरम – उपदेस घनेरे । लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे

---

१ महा प्रलय की रात्रि २ भयानक ३ (श्मशान) मरघट ४ वृक्ष ५ घो
६ हाथी ७ पालतू-हिरण ८ कोयल ९ चक्रवाक १० घना ११ (सर्व) १२ देव
भी कष्ट से जिसको पावें ।

*साभिप्राय विशेषण होने से परिकरालंकार ।

सनेह छाँड़ि नहिं जाई । असमंजस[1] बस भे रघुराई ॥
सोग-श्रम-बस[2] गए सोई । कछुक देव माया मति मोई ॥
हिं जामजुग जामिनि बीती । रामु सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
मारि रथ हाँकहु ताता । आन उपाय बनिहि नहिं बाता ॥
०—रामु लषन सिय जानु[3] चढ़ि, संभुचरन सिरु नाइ ।
सचिव चलायउ तुरत रथु, इत उत खोज[4] दुराइ ॥८६॥
सकल लोग भए भोरू । गे रघुनाथ भयेउ अति सोरू ॥
कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं । 'रामराम' कहि चहुँ दिसि धावहिं ॥
हुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू । भयेउ बिकल बड़ बनिकसमाजू ॥
हिं एक देहिं उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ॥
दहिं आपु, सराहहिं मीना । धिग[6] जीवनु रघु-बीर-बिहीना ॥
पै प्रियबियोगु बिधि कीन्हा । तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा ॥
हि बिधि करत प्रलापकलापा । आए अवध भरे परितापा[7] ॥
षमबियोगु न जाइ बखाना । अवधिआस सब राखहिं प्राना ॥
०—राम-दरस-हित नेम व्रत, लगे करन नरनारि ।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि[8] ॥८७॥
ता सचिव-सहित दोउ भाई । सृंगबेरपुर पहुँचे जाई ॥
रे राम देवसरि देखी । कीन्ह दंडवत हरषु बिसेखी ॥
न सचिव सिय किए प्रनामा । सबहिं सहित सुखु पायेउ रामा ॥
सकल-मुद-मंगल-मूला । सब सुखकरनि, हरनि सब सूला ॥
हि कहि कोटिक कथाप्रसंगा । रामु बिलोकहिं गंगतरंगा ॥
चिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । बिबुध-नदी-महिमा अधिकाई ॥
नु कीन्ह पंथस्रम गयेऊ । सुचि जलु पिअत मुदित मन भयेऊ ॥
मिरत जाहि मिटै स्रमभारू । तेहि स्रम, यह लौकिक व्यवहारू ॥

१ द्विविधा में २ दुःख और थकावट से ३ विमान ४ चिह्न ६ (धिक्) ७ दुःख
सूर्य

दो०—सुद्ध सच्चिदानंद[1]मय, कंद भानु-कुल-केतु ।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति-सागर-सेतु[2] ॥ ८८

यह सुधि गुह[3] निषाद जब पाई । मुदित लिए प्रिय बंधु बो
लिए फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हिय हरषु अ
करि दंडवत भेंट धरि आगे । प्रभुहि बिलोकत अति अनुरा
सहज-सनेह-बिबस रघुराई । पूँछी कुसल निकट बैठा
नाथ कुसल पदपंकज देखे । भयेउँ भागभाजन जन लेखे
देव धरनि-धनु-धाम तुम्हारा । मैं जनु नीचु सहित परि
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ । थापिअ जनु सबु लोगु सि
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना । मोहिं दीन्ह पितु आयसु आ

दो०—बरष चारिदस बासु बन, मुनि-ब्रत-बेषु अहारु ।
ग्रामबास नहिं उचित सुनि गुहहि भयेउ दुखभारु ॥

राम-लषन-सिय-रूप निहारी । कहहिं सप्रेम ग्राम-नर-नारी
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा । लोयनलाहु[4] हमहिं बिधि दीन
तब निषादपति उर अनुमाना । तरु सिंसुपा[5] मनोहर जाना
लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा । कहेउ राम सब भाँति सुहावा
पुरजन करि जोहारु घर आए । रघुबर संध्या करन सिधाए
गुह सवाँरि साथरी डसाई[6] । कुस-किसलय-मय मृदुल सुहाई
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी । दोना भरि भरि राखेसि आ

दो०—सिय सुमंत्र भ्राता सहित, कंद मूल फल खाइ ।
सयन कीन्ह रघु-बंस-मनि, पाय पलोटत भाइ ॥ ८९ ॥

१ (सत्+चित+आनन्द) सत्+चैतन्य+आनन्द २ संसार सागर पुल ३ भीलों के राजा का नाम ४ अर्थात् भक्तजनों में हुआ ५ नेत्रों का ला ६ शीशम ७ बिछाया ।

उठे लषन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी॥
कछुक दूरि सजि बानसरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥
गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती[1]। ठाँव ठावँ राखे अति प्रीती॥
आपु लषन पहिं बैठेउ जाई। कटि[2] भाथी[3] सरचाप चढ़ाई॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयेउ प्रेमबस हृदय बिषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लषन सन कहई॥
भू-पति-भवन सुभाय सुहावा। सुर-पति-सदनु न पटतर[4] पावा॥
मनि-मय-रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति[5] निज हाथ सँवारे॥

दो०—सुचि सुबिचित्र सु-भोग-मय, सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनिदीप जहँ सब बिधि सकल सुपास॥ ९१॥

बिबिध बसन उपधान[6] तुराई[7]। छीरफेन मृदु बिसद[8] सुहाई॥
तहँ सियरामु सयन निसि करहीं। निज छबि-रति-मनोज-मृदु हरहीं॥
ते सिय रामु साथरी सोए। स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेससखा रघुराऊ॥
रामचंदु पति सो बैदेही। सोवति महि, बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू॥

दो०—कैकयनंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहिं, सुखअवसर दुख दीन्ह॥९२॥

भइ दिन-कर-कुल बिटप कुठारी*। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥
भयेउ बिषाद निषादहि भारी। रामसीय-महि-सयन निहारी॥

---

१ बिश्वासपात्र-पहरुआ २ कमर ३ तरकस ४ समता ५ कामदेव ६ तकिया ७ तोषक ८ (विशद)

*दिनकर कुल-बिटप, रूपक कर्म०; दिनकर-कुल-बिटप-कुठारी, सम्प्रदान।

बोले लषन मधुर मृदु-बानी । ग्यान बिराग-भगति-रस सानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥
जोग[1] बियोग[2] भोग भल मंदा[3] । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू । संपति बिपति करम अरु कालू॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू । सरगु[4] नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं । मोह-मूल[5] परमारथ[6] नाहीं॥

दो०—सपने होइ भिखारि नृपु, रंकु नाकपति[7] होइ ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच[8] जिय जोइ ॥९३॥

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोषू । काहुहि बादि न देइय दोषू॥
मोहानिसा[9] सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
एहि जग-जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंचबियोगी[10]॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब बिषय बिलास बिरागा[11]॥
होइ बिबेकु मोहभ्रम भागा । तब रघु-नाथ-चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथु एहू । मन-क्रम बचन रामपद नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथरूपा । अबिगत,[12] अलख,[13] अनादि, अनूपा[14]
सकल-बिकार-रहित[15] गत-भेदा[16] । कहि नित नेति[17] निरूपहिं बेदा

(१) मिलना (२) जुदाई (३) बुरा ४ (स्वर्ग) ५ (मोह मूलक) मोह है मूल में जिनकी, बहुब्रीहि । ६ परम तत्व, माया के बखेड़ों से परे, शास्त्रीय ज्ञान वा सत्यज्ञान ७ इन्द्र (नाक+स्वर्ग) ८ माया ९ अज्ञान रात्रि १० माया से रहित ११ भोग बिलासों से छूट जाय । १२ जो जाना न जाय १३ (अलक्ष्य) जो देखा न जाय । १४ उपमा रहित १५ विकार हैं:—(१) जन्म (२) वृद्धि (३) विवर्ण (४) क्षीण (५) जरा (६) मरण । १६ समदर्शी १७ (न+इति)

दो० भगत भूमि भूसुर[1] सुरभि[2], सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहिं जगजाल[3] ॥६४॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू । सिय-रघुबीर-चरन रत होहू ॥
कहत रामगुन भा भिनुसारा[4] । जागे जग मंगल-दातारा[5] ॥
सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बटछीर मँगावा ॥
अनुजसहित सिर जटा बनाए । देखि सुमंत्र नयनजल छाए ॥
हृदय दाहु अति बदन मलीना । कह कर जोरि बचन अति दीना[6] ॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लै रथ जाहु राम के साथा ॥
बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सँकोच निबेरी[7] ॥

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहैं करौं बलि सोइ ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥६५॥

तात कृपा करि कीजिअ सोई । जातें अवध अनाथ न होई ॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा[8] । तात धरममतु तुम्ह सब सोधा[9] ॥
सिबि दधीच हरिचंद नरेसा । सहे धरमहित कोटि कलेसा ॥
*रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥

---

१ ब्राह्मण २ गाय ३ संसार के फंदे ४ प्रातःकाल ५ संसार को आनन्द देने वाले ६ नम्र ७ दूर करके ८ समझाया ९ मनन किया है ।

*एक बार राजा रन्तिदेव सकुटुम्ब वन में निवास करते थे । एक समय उन्हें ४८ दिन तक अन्न न मिलने के कारण निराहार रहना पड़ा । जब ४९ वें दिन कुछ अन्न प्राप्त हुआ तो भोजन के अवसर पर एक भूखा चांडाल वहां आगया और भोजन मांगा राजा ने सम्पूर्ण भोजन देकर उसकी क्षुधा निवृत्त की और स्वयं भूखा रह गया ।

धरमु न दूसर सत्यसमाना। आगम निगम पुरान[१] बखाना॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँपुर अपजसु छावा॥
संभावित[२] कहँ अपजसलाहू। मरन-कोटि सम दारुन दाहू[३]॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥

दो०—पितुपद गहि कहि कोटि नति, विनय करब करि जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै तात करिय जनि मोरि॥९६॥

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करौं तात कर जोरें॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें॥
सुनि रघु-नाथ-सचिव-संवादू। भयेउ सपरिजन[४] बिकल[५] निषादू॥
पुनि कछु लषन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई। लषनसँदेसु कहिअ जनि जाई॥
कह सुमंत्रु पुनि भूपसँदेसू[६]। सहि न सकिहि सिय बिपिन[७] कलेसू॥
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहिं तुम्हहिं करनीया॥
न तरु निपट अवलंब बिहीना[८]। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥

दो०-मइकें[९] ससुरें सकल सुख, जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति-बिहान[१०] ॥९७॥

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितुसंदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्हि सिख कोटि बिधाना[११]॥
सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खभारू[१२]॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥
प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहत छाँह किमि छेंकी[१३]॥
प्रभा[१४] जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका[१५] चंदु तजि जाई॥

---

१ वेद शास्त्र २ प्रतिष्ठित पुरुष ३ कठिन दुखदाई ४ कुटुम्ब सहित ५ दुखी ६ समाचार ७ जङ्गल ८ बिना सहारे ९ पिता के घर १० दूर होय ११ करोड़ों तरह की १२ दुःख १३ छोड़ कर १४ धूप १५ चांदनी।

गतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा[1] सुहाई॥
तुम्ह पितु-ससुर-सरिस-हितकारी। उतरु देउ फिरि अनुचित भारी॥

दो०—आरतिवस[2] सनमुख भइउँ, बिलगु[3] न मानव तात।
आरज[4] सुत-पद-कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात॥९८॥

पितु-बैभव बिलासु[5] मैं डीठा[6]। नृप मनि-मुकुट[7] मिलित पदपीठा[8]॥
सुखनिधान अस पितुगृह मोरें। पियबिहीन[9] मन भाव न भोरें॥
ससुर चक्कवइ[10] कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरधसिंघासन आसनु देई॥
ससुर एताद्स[11] अवधनिवासू। प्रिय परिवारु मातुसम सासू॥
बिनु रघुपति-पद-पदुम-परागा। मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा॥
अगम पंथ बन भूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग[12] बिहंगा[13]। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥

दो०—सासु ससुर सन मोरि हुँति[14], बिनय करबि परि पायँ।
मोरि सोचु जनि करिअ कछु, मैं बन सुखी सुभाय॥९९॥

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर-धुरीण[15] धरें धनु भाथा॥
नहिं मग-स्रमु,भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोच करिअ जनि भोरें[16]॥
सुनि सुमंत्रु सिय-सीतलि बानी। भयेउ बिकल जनु फनि[17] मनिहानी[18]॥
नयन सूझ नहिं सुनै न काना। कहि न सकै कछु अति अकुलाना॥

---

१ वाणी २ दुखी होकर ३ बुरा ४ (आर्य्य) श्वसुर ५ आनंद ६ देखा है मणियों से बने हुए राजाओं के मुकुट ८ पैरों पर ९ रहित १० (चक्रवर्ती) ११ ऐसे १२ हरिण १३ पक्षी १४ मेरी ओर से १५ मुखिया १६ भूल कर भी १७ सर्प १८ मणि रहित।

रामु प्रबोधु कीन्हि बहु भाँती । तदपि होति नहिं सीतल छाती॥
जतन[1] अनेक साथहित[2] कीन्हे । उचित उतर रघुनंदन दीन्हे॥
मेटि जाइ नहिं रामरजाई[3] । कठिन करमगति कछु न बसाई॥
राम-लषन-सिय पद सिरु नाई । फिरेउ बनिकु जिमि मूर[4] गँवाई॥
दो०—रथ हाँकेउ, हय रामतन, हेरि हेरि हिहिनाहि ।
देखि निषाद विषादबस, धुनहिं सीस पछिताहि ॥१००॥
जासु वियोग बिकल पसु ऐसे । प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाए । सुरसरितीर आप तब आए॥
माँगी नाव, न केवट आना[5] । कहै तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन-कमल-रज कहँ सबु कहई । मानुषकरनि मूरि[6] कछु अहई॥
छुअत सिला[7] भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई । बाट[8] परै मोरि नाव उड़ाई॥
एहि प्रतिपाली सबु परिवारू । नहिं जानौं कछु और कबारू[9]॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पदपदुम पखारन[10] कहहू॥
छंद—पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं॥
बरु तीर मारहु लषन पै जब लगि न पायँ पखारिहौं[11] ।
तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपालु पारु उतारिहौं॥
सो०—सुनि केवट के बयन प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहँसे करुना-अयन चितै जानकी लषन-तन ॥१०१॥
कृपासिंधु बोले मुसुकाई । सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू । होत बिलंब, उतारहि पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा । उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥

---

१ यत्न २ संग के लिये (३) राजाज्ञा (४) मूल धन पूंजी (५) लाया ६ औषध ७ पत्थर ८ जीविका की राह ९ कारोबार १० कमलरूपी चरण ११ प्रक्षालन धोना ।

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा[1]। जेहि जगु किए तिहुँ पगहुँ[2] तें थोरा॥
पदनख[3] निरखि[4] देवसरि हरषी। सुनि प्रभुबचन मोहि मत करषी[5]।
केवट रामरजायसु पावा। पानि कठवता[6] भरि लेइ आवा॥
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरनसरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज[7] कोउ नाहीं॥

दो०—पद पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर[8] पारु करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयेउ लेइ पार॥१०२॥

उतरि ठाढ़ भए सुरसरिरेता। सीय रामु गुह लषन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पियहिय की सिय जाननिहारी। मनिमुँदरी मन-मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी[9]॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा॥

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥ १०३॥

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव[10] नायेउ माथा॥
सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति-देवर-सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी॥
सुनि सियबिनय प्रेम-रस-सानी। भइ तब बिमल बारि बरबानी[11]॥
सुनु रघु-बीर-प्रिया वैदेही[12]। तब प्रभाव जग बिदित न केही॥

---

१ प्रार्थना २ तीन पैर ३ चरणों के नाखून ४ देखकर ५ हरलिया (६) पात्र विशेष ७ पुन्य का समूह ८ पूर्वज ६ पूरे तौर से १० महादेव ११ पवित्र जल की श्रेष्ठ वाणी निकली १२ सीता।

लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥
तुम्ह जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि, मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि, देवि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥

दो—प्राननाथ देवरसहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥१०४॥

गंगवचन सुनि मंगलमूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु-गुहहिं कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥
दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघु-कुल मनि[1] मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरनसेवकाई॥
जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी[2] मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देव रजाई। सोइ करिहौं रघु-बीर-दोहाई॥
सहज सनेहु[3] राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा-अनुज-सिय-सहित बन गवनु[4] कीन्ह रघुनाथ॥१०५॥

तेहि दिन भयेउ बिपट तर बासू। लषन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत[5] करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥
सचिव[6] सत्य श्रद्धा[7] प्रिय नारी। माधव[8] सरिस मीतु[9] हितकारी[10]॥
चारि पदारथ भरा भँडारू[11]। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥
छेत्रु अगम गढु[12] गाढ़[13] सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह[14] पावा॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष-अनीक-दलन[15] रनधीरा॥
संगमु-सिंहासन सुठि सोहा। छत्रु अषयवट[16] मुनिमनु मोहा॥

---

१ सूर्य कुल में मणि सदृश द्युति वाले हैं जो २ पत्तों की झोंपडी ३ असाधारण प्रेम ४ कूच ५ प्रातःकाल की शौच संध्यावंदन इत्यादि ६ मंत्री ७ ईश्वर पर दृढ़ विश्वास ८ वेनी माधव ९ मित्र १० हितू ११ कोष १२ किला १३ मजबूत १४ वैरी १५ पाप की सेना के नष्ट करने वाले १६ अषयवट।

चवँर[1] जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

दो०—सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन-काम।
बंदी वेद-पुरान-गन कहहिं विमल गुनग्राम[2]॥१०६॥

को कहि सकै प्रयागप्रभाऊ। कलुष-पुंज-कुंजर-मृग-राऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुखसागर रघुबर सुखु पावा॥
कहि सिय लषनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख[3] तीरथ-राज-बड़ाई॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम[4] अति अनुरागा॥
एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी[5]। सुमिरत सकल-सुमंगल-देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिवसेवा। पूजि जथाविधि तीरथदेवा[6]॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए॥
मुनि-मन-मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंदरासि[7] जनु पाई॥

दो०—दीन्हि असीस, मुनीस उर, अति अनंदु अस जानि
लोचनगोचर[8] सुकृतफल[9], मनहुँ किए बिधि आनि॥१०७॥

कुसल प्रश्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के[10]॥
सीय-लषन-जन-सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए॥
भए बिगतस्रम[11] राम सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥
आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जपु जोग बिरागू॥
सफल सकल-सुभ-साधन-साजू[12]। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥
लाभ-अवधि सुभ-अवधि[13] न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज-पद-सरसिज सहज सनेहू॥

दो०—करम बचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं, किए कोटि उपचार[14]॥१०८॥

---

१ चौर २ गुणों का समूह ३ अपने मुँह से ४ (महातम) फल ५ त्रिवेणी ६ तीर्थराज के देवता ७ ब्रह्मानंद का समूह ८ आँखों के सामने ९ पुन्य का फल १० अमृत ११ स्वस्थ १२ सम्पूर्ण शुभ साधनों का सामान १३ सीमा १४ तदबीर।

सुनु मुनिवचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनँद अघाने[1]॥
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥
सो बड़ सो सब-गुन-गन-गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन-अगोचर सुख[2] अनुभवहीं॥
यह सुधि पाइ प्रयागनिवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाजआश्रम सब आए। देखन दसरथसुअन सुहाए॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयनलाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥

दो०—राम कीन्ह विश्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषन जनु, मुदित मुनिहिं सिरु नाइ॥१०९॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम[3] सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं॥
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं "मगु[4] दीख हमारा"॥
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित[5] हृदय चले रघुराई॥
ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारिनर धाई॥
होहिं सनाथ जनमफलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥

दो०—बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाइ मनकाम[6]।
उतरि नहाए जमुनजल, जो सरीरसम स्याम॥११०॥

सुनत तीरवासी नरनारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लषन-राम-सिय-सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा[7] बसहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥

(१) भक्ति-भाव और आनन्द में परिपूरित (२) अकथनीय सुख ३ आसाम ४ रास्ता ५ प्रसन्न ६ इच्छा अभिलाषा ७ इच्छा

ोन्ह महुँ बयबिरिध सयाने । तिन्ह करि जुगुति[1] रामु पहिचाने ॥
लकथा तिन्ह सबहिं सुनाई । बनहि चले पितुआयसु पाई ॥
। सविषाद[2] सकल पछिताहीं । रानी राय कीन्ह भल नाहीं ॥
अवसर एकु तापस आवा । तेजपुंज लघुबयस सुहावा ॥
े-अलषित[3] गति बेष बिरागी । मन-क्रम-बचन रामअनुरागी[4] ॥
ो०—सजल नयन तन पुलकि, निज इष्टदेव पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनितल[5], दसा न जाइ बखानि ॥१११॥
र सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारस पावा ॥
हुँ प्रेम परमारथ दोऊ । मिलत धरें तन कह सब कोऊ ॥
रि लषन पायन्ह सोइ लागा । लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा ॥
ने सिय-चरन-धूरि धरि सीसा । जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा ॥
न्ह निषाद दंडवत तेही । मिलेउ मुदित लखि रामसनेही ॥
अत नयनपुट[6] रूपु-पियूखा[7] । मुदित सुअसनु[8] पाइ जिमि भूखा ॥
पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
म-लषन-सिय-रूप निहारी । होहिं सनेह बिकल नरनारी ॥
ो०—तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहि[9] सिखावन दीन्ह ।
रामरजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइ कीन्ह ॥११२॥
नि सिय राम लषन कर जोरी । जमुनहिं कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥
ले ससीय मुदित दोउ भाई । रबितनुजा[10] कै करत बड़ाई ॥
थिक अनेक मिलहिं मग जाता । कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
ाजलषन सब अंग तुम्हारे । देखि सोचु अति हृदय हमारे ॥
ारग चलेहु पयादेहि पाएँ । ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ ॥
अगमु पंथ गिरि कानन भारी । तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥
रि केहरि बन जाइ न जोई । हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥

१ युक्ति २ दुखी ३ जो दिखाई न दे ४ प्रेमी ५ पृथ्वी पर ६ नेत्र-रूप दोनाभर के ७ अमृत ८ सुन्दर भोजन ९ मित्र को १० जमुना ।

जाव जहाँ लगि तहँ पहुँचाई । फिरव वहोरि तुम्हहिं सिरु नाई

दो०—एहि विधि पूँछहिं प्रेम बस, पुलकगात जलु नैन ।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं, कहि विनीत मृदु बैन ॥११

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं । तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं
केहि सुकृती केहि घरी बसाए । धन्य पुन्यमय परम सुहाए
जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं । तिन्ह समान अमरावति नाहीं
पुन्यपुंज मग-निकट-निवासी । तिन्हहिं सराहहिं सुर पुर वासी
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि । सीता-लषन-सहित घनस्यामहि
जे सर सरित राम अवगाहहिं[1]। तिन्हहिं देव-सर-सरित सराहहिं
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई । करहि कलपतरु[2] तासु बड़ाई
परसि राम-पद-पदुम-परागा । मानति भूमि भूरि निज भागा

दो०—छाँह करहिं घन विबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं ।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मग जाहिं ॥१२४

सीता-लषन-सहित रघुराई । गाँव निकट जब निकसहिं जाई
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी । चलहि तुरत गृह-काज बिसारी
राम-लषन-सिय-रूप निहारी । पाइ नयनफलु होहिं सुखारी
सजल बिलोचन[3] पुलक सरीरा । सब भए मगन देखि दोउ बीरा
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहि जनु रंकन्हि सुर-मनि ढेरी
एकन्हि एक बोलि सिख देहीं । लोचन–लाहु लेहु छन एहीं
रामहिं देखि एक अनुरागे[4] । चितवत चले जाहिं सँग लागे
एक नयनमग छबि उर आनी । होहिं सिथिल तन मन बरबानी

दो०—एक देखि बटछाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिं गवाँइअ[6] छिनुक श्रम, गवनब अबहिं कि प्रात॥१

१ स्नान करते हैं २ कल्पवृक्ष ३ नेत्र ४ कौस्तुभ-मणि ५ प्रेम किया ६ खोजिये ।

कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ[1] नाथ कहहिं मृदुबानी॥
प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील बिसेखी॥
अमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बटछाहीं॥
नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥
चहुँ ओरा। रामचंद्र-मुख-चंद-चकोरा॥
तमाल-बरन तनु सोहा। देखत कोटि-मदन-मनु मोहा॥
मनि-बरन[2] लषनु सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जी के॥
पट कटिन्ह कसे तूनीरा[3]। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥
दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद-परब-बिधु-बदन[4] बर, लसत स्वेद कन-जाल॥११६॥
मनोहर जोरी। सोभा बहुत, थोरि मति मोरी॥
लषन-सिय-सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥
नारि नर प्रेम-पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे॥
समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेह सकुचाहीं॥
बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
कुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूँछत डरहीं॥
मिनि अबिनय[5] छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
कुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने॥
दो०—स्यामल गौर किसोर बर, सुंदर सुखमा अयन[6]।
सरद-सर्बरी-नाथ-मुख, सरदसरोरुह नयन[7]॥११७॥
मनोज-लजावनिहारे[8]। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय, मन महुँ मुसुकानी॥
हिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी[9]॥

---

१ आचमन कीजिये २ बिजली के से रूप वाला ३ तरकस ४ शरद ऋतु के चन्द्र सदृश उज्ज्वल बदन ५ ढीठता ६ सुन्दरता का घर ७ शरद ऋतु कमल के सदृश नेत्र-करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले ९ सुन्दर स्त्री (बहु०)

सकुचि सप्रेम बाल मृग-नयनी । बोली मधुरबचन पिकबयनी[1]
सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लषनु लघुदेवर ...
बहुरि बदनुविधु अंचल[2] ढाँकी । पियतन चितै भौंह करि बाँका
खंजन[3] मंजु तिरीछे नैननि । निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि
भईं मुदित सब ग्रामवधूटीं । रंकन्ह रायरासि जनु लूटीं

दो०—अतिसप्रेम सिय पायँ परि, बहु बिधि देहिं असीस,
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह; जब लगि महि अहिसीस ॥

पारबतीसम पतिप्रिय होहू । देबि न हम पर छाँड़ब छोहू[4]
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी । जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी[5]
दरसनु देब जानि निज दासी । लखीं सीय सब प्रेमपिआसीं[6]
मधुरबचन कहि कहि परितोषीं । जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषीं
तबहिं लषन रघुबररुख जानी । पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी
सुनत नारिनर भए दुखारी । पुलकित गात, बिलोचन बारी[7]
मिटा मोद, मन भए मलीने । बिधि निधि[8] दीन्हि लेत जनु छीने
समुझि करम-गति धीरजु कीन्हा । सोधि[9] सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा

दो०—लषन-जानकी-सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिए लाइ मन साथ ॥१

फिरत नारिनर अति पछिताहीं । दैअहि दोषु देहिं मन ...
सहित बिषाद परसपर कहहीं । बिधिकरतब उलटे सब ...
लिपट[10] निरंकुस[11] निठुर[12] निसंकू[13] जेहिंससिकीन्हसरुज[14] ...
रूख कलपतरु, सागरु खारा । तेहि पठए बन राजकुमारा
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू । कीन्ह बादि बिधि ...
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना । रचे बादि बिधि बाहन नाना

---

१ कोयल की सी भाषा बोलने वाली २ वस्त्र ३ खजन पक्षी की तरह सुन्दर ...
४ कृपा, प्रेम ५ फिर ६ प्रेम चाहने वाली ७ जल ८ कोश ९ ढूँढ़...
१० बिल्कुल ११ ढीठ १२ (निठुर) कठोर निडर १४ रोगी १५ जूता ।

हि परहिं हाँसि कुसपाता। सुभग सेज[1] कत सृजत विधाता॥
र:बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवलधाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥

दो०--जौं ए मुनि-पट-धर[2] जटिल[3], सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार॥१२०॥

र कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन[4] जग माहीं॥
कहहिं ए सहज सुहाए। आप प्रगट भए बिधि न बनाए॥
लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर[5] बरनी॥
खोजि भुवन दस चारी। कहँ अस पुरुष, कहाँ असि नारी॥
हिं देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर[6] जोग बनावै लागा॥
ह बहुत श्रम एक न आए। तेहि इरिषा[7] बन आनि दुराए॥
कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहिं परम धन्य करि मानहिं॥
पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं, देखिहहिं[8] जिन्ह देखे॥
०--एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर॥१२१॥
रे सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं॥
-पद-कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय[9] कहहिं बर बानी॥
सत मृदुल चरन अरुनारे[10]। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥
माँगा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहि सखि आँखिन्ह माहीं॥
नरनारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥
ने सुरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि, भाई॥
मरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई॥
दो०—अबला बालक बृद्धजन, कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहिं॥१२२॥

---

१ सुन्दर सैया २ मुनियों के से जो पहिने हों वस्त्र ३ जो जटा रखाये हों ४ भोजन ५ प्रत्यक्ष ६ बराबर का ७ जलन ८ देखेंगे ९ गद्गद हृदय १० लाल।

गाँव गाँव अस होइ अनंदू । देखि भानु-कुल-कैरव-चंदू[1]
जे कछु समाचार सुनि पावहिं । ते नृपरानिहिं दोषु लगावहिं
कहहिं एक अति भल नरनाहू । दीन्ह हमहिं जेइ लोचनलाहू
कहहिं परसपर लोग लोगाईं । बातैं सरल सनेह सुहाईं
ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए । धन्य सो नगरु जहां तैं आए
धन्य सो देसु सैलु[2] बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ
सुख पायेउ बिरंचि रचि तेही । ए जेहि के सब भांति सनेही
राम--लषन--पथि[3] कथा सुहाई । रही सकल मग--कानन छाई

दो०—एहि बिधि रघु-कुल-कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत ।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय--सौमित्रि- समेत ॥१२३॥

आगें रामु लषनु बन पाछें । तापसबेष बिराजत काछें
उभय[4] बीच सिय सोहति कैसें । ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसें
बहुरि कहौं छबि जसि मन बसई । जनु मधु-मदन-मध्य[5] रति लसई
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही । जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही
प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मग चलति सभीता
सीय-राम-पद-अंक बराएँ । लषन चलहिं मगु दाहिन लाएँ
राम-लषन-सिय प्रीति सुहाई । बचनअगोचर, किमि कहि जाई
खग मृग मगन देखि छबि होहीं । लिए चोरि चित राम-बटोही[8]

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सियसमेत दोउ भाइ ।
भव-मगु-अगमु अनंदु तेइ, बिनु श्रम रहे सिराइ[7] ॥१२४॥

अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ । बसहिं लषन-सिय-राम बटाऊ[8]
राम-धाम-पथ[9] पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई

---

१ सूर्यकुलरूपी कुमोदिनी को चन्द्रमा के समान प्रसन्न करने वाले। २ (शैल) पर्वत ३ राहगीर बटोही ४ दोनों ५ बसंत और कामदेव के बीच में ६ रास्तागीर ७ पार होगये ८ बटोही ९ स्वर्ग का रास्ता।

ब रघुबीर श्रमित सिय जानी । देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
हँ बसि कंद मूल फल खाई । प्रात नहाइ चले रघुराई ॥
खत बन सर सैल सुहाए । बालमीकि आश्रम प्रभु आए ॥
मु दीख मुनिबास सुहावन । सुंदर गिरि काननु जलु पावन ॥
रनि सरोज बिटप बन फूले । गुंजत मंजु मधुप[1] रस-भूले ॥
ग मृग बिपुल कोलाहल करहीं । बिरहित[2] बैर मुदित मन चरहीं ॥

दो०—सुचि सुंदर आश्रमु निरखि[3], हरषे राजिवनैन[4] ।
सुनि रघु-बर आगमनु मुनि, आगे आयेउ लैन ॥१२५॥

ुनि कहँ राम दंडवत[5] कीन्हा । आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा ॥
खि राम छबि नयन जुड़ाने[6] । करि सनमानु आश्रमहिं आने ॥
ुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए । कंद मूल फल मधुर मँगाए ॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए । तब मुनि आसन दिए सुहाए ॥
बालमीकि मन आनँदु भारी । मंगलमूरति नयन निहारी ॥
तब करकमल जोरि रघुराई । बोले बचन श्रवन-सुख-दाई[7] ॥
तुम्ह त्रि-काल-दरसी मुनिनाथा । बिस्व बदर[8] जिमि तुम्हरें हाथा ॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी । जेहि जेहि भांति दीन्ह बनु रानी ॥

दो०—तात बचन पुनि मातुहित, भाइ भरत अस राउ ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्यप्रभाउ ॥१२६॥

देखि पायँ मुनिराय तुम्हारे । भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
अब जहँ राउर आयसु होई । मुनि उदबेगु[9] न पावै कोई ॥
मुनि तापस[10] जिन्ह तें दुखु लहहीं । ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥
मंगलमूल बिप्रपरितोषू । दहै कोटि कुल भू-सुर-रोषू ॥
अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ । सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ ॥

---

१ भौंरा २ बिना ३ देख कर ४ कमल के सदृश नेत्र वाले (बहु.) ५ प्रणाम ६ शीतल हुए ७ कानों को सुख देने वाले ८ बेर ९ कष्ट १० तपस्वी ।

तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला[1] । बास करौं कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुबरबानी । साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न कहहु अस रघु-कुल-केतू । तुम्ह पालक संतत श्रुतिसेतू[2]॥

छंद—श्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीसमाया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु[3] महि-धरु लपनु स-चराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज-तनु चले दलन[4] खल निसिचर-अनी॥

सो०—राम सरूप तुम्हार बचनअगोचर बुद्धिपर।
अबिगत[5] अकथ[6] अपार नेति नेति नित निगम कह॥१२॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि-हरि-संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। अउरु तुम्हहि को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर-चंदन॥
चिदानंदमय[8] देह तुम्हारी। बिगतबिकार जान अधिकारी॥
नरतनु धरहु संत-सुर-काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥

दो०—पूछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥१२८॥

सुनि मुनि बचन प्रेमरस-साने। सकुचि राम मनमहुँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअरस-बोरी॥
सुनहु राम अब कहौं निकेता। जहाँ बसहु सिय-लषन-समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्रसमाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥

---

१ पत्ते और तिनकों का घर २ हमेशा वेद की मर्यादा पालनेवाले हो ३ सहस्र सिर जिसके ऐसा सर्पों का राजा ४ नाश करने को ५ दुष्ट और निशाचरों की सेना ६ जो जाना न जाय ७ जो कहा न जाय ८ सर्वदा आनन्द में रहने वाला।

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे[1] ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरसजलधर अभिलाषे[2] ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूपबिंदु-जल होहिं[3] सुखारी ॥
तिन्ह के हृदयसदन सुखदायक। बसहु बंधु-सिय-सह रघुनायक ॥
दो०—जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा[4] जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनै राम बसहु हिय तासु ॥१२९॥
प्रभुप्रसाद[5] सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहै नित नासा[6] ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभुप्रसाद पट भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर-गुरु-द्विज देखी। प्रीतिसहित करि बिनय बिसेखी ॥
कर नित करहिं रामपद-पूजा। रामभरोस हृदय नहिं दूजा ॥
चरन रामतीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
मंत्रराजु[7] नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥
तरपन होम करहिं विधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहिं जिअ जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी ॥
दो०—सबु करि माँगहिं एकु फलु राम-चरन-रति होउ।
तिन्ह के मनमंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥१३०॥
काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।
सब के प्रिय सबके हितकारी। दुख-सुख-सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहि छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननीसम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं परसंपति देखी। दुखित होहिं परबिपति बिसेखी ॥

१ उत्तम २ बादलों के दरसन की आशा धरे हुये ३ सुन्दरता रूपी जल की बूद ४ जीभ (जिह्वा) ५ आपकी कृपा ६ नाक ७ सब से बड़ा मन्त्र अर्थात् राम रामेति इत्यादि।

जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे। तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे॥

दो० स्वामि सखा पितु मातु गुर, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मनमंदिर तिन्ह के बसहु, सीयसहित दोउ भ्रात॥१३१॥

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। विप्र-धेनु-हित संकट[1]-सहहीं॥
नीतिनिपुन जिन्ह कइ जग लीका[2]। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
रामभगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन-सुखदाई[3]॥
सब तजि तुम्हहि रहै उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु[4] समाना। जहँ तहँ देख धरे धनुबाना॥
करम-बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥

दो०—जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥१३२॥

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राममन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक। आश्रमु कहौं समय-सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू[5]॥
सैलु-सुहावन[6] कानन चारू। करि-केहरि-मृग बिहँग बिहारू[7]॥
नदी पुनीत[8] पुरान बखानी। अत्रिप्रिया* निज-तप-बल आनी॥
सुरसरिधार नाउँ मंदाकिनि। जो सब-पातक-पोतक-डाकिनि॥
अत्रि आदि मुनि-बर बहु, बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥

---

१ कष्ट २ मर्यादा ३ सुख देने वाला घर ४ मोक्ष ५ आराम, सुभीता ६ सुन्दर पर्वत ७ विहार करते हैं, विचरते हैं। ८ पवित्र।

* अनुसूया दक्ष की पुत्री थी। यह १०००० वर्ष तप कर मन्दाकिनी को इसलिये लाई कि पति वृद्ध थे और स्नान के लिये चलने में कष्ट होता था।

चलहु सफल श्रम[1] सब कर करहू। राम देहु गौरव[2] गिरिबरहू॥

दो०—चित्र-कूट-महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ॥१३३॥

रघुबर कहेउ लषन भल घाटू। करहु कतहु अब ठाहर ठाटू[3]॥
लषनु दीख पय[4] उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच[5] सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज[6] नाना॥
चित्रकूट जनु अचल[7] अहेरी[8]। चुकै न घात मार मुठभेरी[9]॥
अस कहि लषन ठाँव देखरावा। थल बिलोकि रघुबर सुख पावा॥
रमेउ[10] राममनु देवन्ह जाना। चले सहित सुरथपति प्रधाना॥
कोल-किरात-बेष सब आए। रचे परन-तृन-सदन सुहाए॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

दो०—लषन-जानकी-सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत[11]।
सोह मदन[12] मुनिबेष जनु, रति-रितुराज-समेत[13]॥१३४॥

अमर नाग किन्नर दिसि-पाला। चित्रकूट आए तेहि काला॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥
बरषि सुमन कह देव-समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए॥
चित्रकूट रघुनंदनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए॥
आवत देखि मुदित मुनिबृंदा। कीन्ह दंडवत रघु-कुल-चंदा॥
मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥

---

(१) मिहनत (२) बड़ाई (३) ठहरने का प्रबन्ध (४) पयस्विनी (५) प्रत्यंचा (६) कलियुग के पाप निशाना है (७) अटल (८) शिकारी (९) नजदीक से (१०) मन लगजाना (११) सुन्दर घर (१२) कामदेव (१३) रति और वसंतऋतु सहित।

... नदी, ... धनुष की ... की प्रत्यचा है, सम, दम दान बाण हैं, ... भाँति २ के सम्पूर्ण कलियुग के पाप लक्ष्य हैं।

सिय-सौमित्रि-राम-छवि देखहिं। साधन[1] सकल सफल करि लेखहिं
दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किए मुनिबृंद[2] ।
करहिं जोग जप जाग[3] तप, निज आश्रमनि सुछंद[4] ॥१३५॥
यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नवनिधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर[5] तिन्हहिं पूछहिं मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर-निकाई[6]। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर, नयन जल बाढ़े॥
राम सनेह-मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥
दो०—अब हम नाथ सनाथ सब, भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु, राउर कोसलराय॥ १३६॥
धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम धारा॥
धन्य बिहँग[7] मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई[8]॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा[9]॥
जहँ तहँ तुमहिं अहेर[10] खेलाउब। सर निरझर[11] भल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥
दो०—बेदबचन-मुनिमन-अगम, ते प्रभु करुनाअयन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक-बयन॥१३७॥

---

(१) उपाय (२) मुनियों का समूह (३) जग्य (यज्ञ) (४) निरंकुश (५) दूसरे ६ सुन्दरता ७ पक्षी ८ बचा कर ९ देखा हुआ १० शिकार ११ झरना ।

रामहिं केवल प्रेमु पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल-बन-चर[1] तब तोषे[2]। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥
बिदा किए सिरु नाइ सिधाए। प्रभुगुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर-मुनि-सुखदाई॥
जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयेउ बनु मंगल-दायकु[3]॥
फूलहिं फलहिं बिटप[4] बिधि नाना। मंजु-बलित-बर-बेलि-बिताना[5]॥
सुर-तरु-सरिस सुभाय सुहाए। मनहुँ बिबुधबन[6] परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर[7] स्रेनी[8]। त्रिबिध बयारि बहै सुखदेनी॥

दो०—नीलकंठ कलकंठ[9] सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, श्रवनसुखद चितचोर॥१३८॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत-बैर[10] बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर रामछबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी॥
बिबुधबिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर-कन्या। मेकलसुता[11] गोदावरि धन्या॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय--अस्त--गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल--सुर--बासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूटजसु गावहिं तेते॥
बिंधि[12] मुदित मन सुख न समाई। श्रम बिनु बिपुल[13] बड़ाई पाई॥

दो०—चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्यपुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति॥ १३९॥

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम-फल होहिं बिसोकी[14]।
परसि चरनरज अचर[15] सुखारी। भए परमपद के अधिकारी।
सो बनु सैल सुभाय सुहावन। मंगलमय अति-पावन-पावन[16]।

१ वनवासी २ सतुष्ट किया ३ मंगल देने वाले ४ वृक्ष ५ वेलों के चँदोवे ६ देवताओं के बन ७ भौंरा ८ पांति ९ कोयल १० प्रेम से ११ नर्वदा १२ विंध्याचल पर्वत १३ बहुत १४ शोक रहित १५ स्थावर १६ अत्यंत पवित्र से भी पवित्र।

महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू। सुखसागर[1] जहँ कीन्ह निवासू॥
पयपयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय-लषनु-राम रहे आई॥
कहि न सकहिं सुषमा[2] जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन[3]॥
सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबरकमठ[4] कि मंदर लेहीं॥
सेवहिं लषनु करम-मन-बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥

दो०—छिनु छिनु लखि सिय-राम-पद, जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लषनु चितु, बंधु-मातु-पितु-गेहु॥१४०॥

रामसंग सिय रहति सुखारी। पुर-परिजन-गृह-सुरति[5] बिसारी[6]॥
छिनु छिनु पिय-बिधु-बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर-कुमारी॥
नाह-नेहु[7] नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सियमनु रामचरन अनुरागा। अवध-सहस-सम बन प्रिय लागा॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा॥
सासु-ससुर सम मुनितिय मुनिवर। असन अमिय सम कंद मूल फर॥
नाथ-साथ साँथरी सुहाई। मयन-सयन-सय-सम[8] सुखदाई॥
लोकप[9] होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय-बिलासू॥

दो०—सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृनसम बिषय-बिलासु।
रामप्रिया जग-जननि सिय, कछु न आचरजु तासु॥१४१॥

सीय लषनु जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लषनु सिय अति सुखु मानी॥
जब जब राम अवध-सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥

---

१ सुख के समुद्र २ सुन्दरता ३ हजार हैं मुख जिसके (शेषनाग) ४ पोखर का कछुआ ५ स्मृति ६ छोड़दी ७ पति-प्रेम ८ सैकड़ों कामदेव के सदृश ९ दिगपाल।

सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत-सनेहु-सीलु-सेवकाई ॥
कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी ॥
लखि सिय लषनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहिं अनुसर[1] परिछाहीं॥
प्रिया-बंधु-गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत-उर-चंदनु[2]॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता[3]। सुनि सुखु लहहिं लषनु अरु सीता॥

दो०—रघु-लषन-सीता-सहित, सोहत परननिकेत।
जिमि बासव[4] बस अमरपुर, सची-जयंत-समेत ॥१४२॥

जोगवहिं प्रभु सियलषनहिं कैसें। पलक बिलोचनगोलक जैसें ॥
सेवहिं लषनु सीय रघुबीरहिं। जिमि अविवेकी[5] पुरुष सरीरहिं ॥
एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग-मृग-सुर-तापस-हितकारी ॥
कहेउँ राम-बन-गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥
फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिवसहित रथ देखेसि आई ॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयेउ बिषादू ॥
'राम राम सिय लषन' पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी ॥
देखि दखिन दिसि[6] हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥

दो०—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु, मोचहिं लोचनबारि।
ब्याकुल भयेउ निषाद सब, रघु-बर-बाजि निहारि ॥१४३॥

धरि धीरजु तब कहै निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ॥
तुम्ह पंडित परमारथज्ञाता[7]। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता[8]॥
बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोकसिथिल रथु सकै न हाँकी। रघु-बर-बिरह-पीर उर बाँकी[9] ॥
चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बनमृग[10] मनहुँ आनि रथ जोरे॥

---

१ अनुसार करती है, २ भक्तों के हृदय को चन्दन रूप ३ पवित्र ४ इन्द्र ५ अज्ञानी ६ दक्षिण दिशा ७ ज्ञानतत्व का जानने वाला ८ उलटा दैव ९ बड़ी भारी १० जङ्गली हिरन

अति आरत सब पूछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥
सुनै न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप तेहि तेहि बूझा॥
दासिन्ह दीख सचिव-बिकलाई। कौसल्यागृह गईं लेवाई॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमियरहित जनु चंदु बिराजा॥
आसन - सयन - बिभूषन - हीना। परेउ भूमि तल निपट मलीना॥
लेइ उसास सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ[1] जजाती*॥
लेत सोचभरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती†॥
राम राम कह रामसनेही। पुनि कह राम लषन बैदेही॥
दो०—देखि सचिव जयजीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु॥१४९॥
भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूडत कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी॥
रामकुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही॥
आने फेरु कि बनहिं सिधाए। सुनत सचिवलोचन जल छाए॥
सोक-बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कहु सिय - राम - लषन - संदेसू॥
राम - रूप - गुन-सील-सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥
राज सुनाइ दीन्ह बनवासू। सुनि मन भयेउ न हरष हराँसू[2]॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥

*राजा नहुष का पुत्र राजा ययाति धर्म बल से स्वर्ग प्राप्त कर चुका था इन्द्र ने इसको गद्दी पर बैठा कर सारे सत्कार्य इसी के मुंह से कहला लिये। कम से पुन्य कम होगया, तब तो इन्द्र ने इनको स्वर्ग से गिरा दिया।

†कश्यप के पुत्र अरुण के सम्पाती और जटायु दो पुत्र थे इन्होंने बलाभिमान से सूर्य के निकट जाने की प्रतिज्ञा की; जब सूर्य की किरणों से पर जलने लगे तब जटायु तो लौट आया परन्तु सम्पाती न लौटा। उसके पर जल गये और व्याकुल होकर महेन्द्र पर्वत पर गिर गया।

१ गिरगया २ शोक, दुःख

—सखा रामु-सिय-लषनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्रान कहौं सति भाउ ॥१५०॥

पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम-सुअन-सँदेस सुनाऊ॥
हे सखा सोइ वेगि उपाऊ। रामु-लषन-सिय नयन देखाऊ॥
उ धीर धरि कह मृदुबानी। महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी॥
सुधीर धुरंधर देवा। साधुसमाज सदा तुम्ह सेवा॥
म मरन सब दुख-सुख-भोगा। हानि लाभ, प्रियमिलन वियोगा॥
ा करम वस होहिं गोसाईं। बरबस[1] राति दिवस की नाईं॥
हरषहिं जड़, दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥
ज धरहु बिबेक विचारी। छाँड़िय सोचु सकल हितकारी॥

ो०—प्रथम बास तमसा भयेउ, दूसर सुरसरि-तीर।
न्हाइ रहे जलपान करि, सिय समेत दोउ वीर ॥ १५१ ॥

ट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर[2] गवाँई॥
त प्रात बटछीरु मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा॥
सखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥
न बानधनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥
कल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥
त प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पदपंकज गहेहू॥
रवि पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥
मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुण्य तुम्हारें॥
०—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं॥
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पायँ पुनि फिरि आइहौं॥
जननी सकल परितोष परि परि पायँ करि बिनती घनी।
तुलसी करहु सोइ जतन जेहि कुसली[3] रहहिं कोसलधनी॥

---

1 अनिवार्य्य 2 शृङ्गवेरपुर 3 प्रसन्न।

हा जानकी लषन, हा रघुवर। हा पितु-हित-चित चातक जलधर‡

दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवरविरह, राउ गए सुरधाम ॥१५६॥

जिअन-मरन-फलु दसरथ पावा। अंड[1] अनेक अमल जसु छावा।
जिअत राम-बिधु-बदनु निहारा। रामबिरह करि मरनु सवाँरा।
सोकविकल सब रोवहिं रानी। रूपु सील बलु तेज बखानी।
करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा।
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरबासी।
अथएउ आजु भानु-कुल भानू। धरमअवधि गुन-रूप-निधानू।
गारी सकल कैकइहि देहीं। नयनविहीन[2] कीन्ह जग जेहीं।
एहि बिधि बिलपत रैनि[3] बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी।

दो०—तब वसिष्ठ मुनि समयसम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहिं कर, निज विग्यान-प्रकास ॥१५७

तेल नाव भरि नृपतन राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा।
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप-सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू।
एतनेइ कहेउ भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयेउ दोउ भाई।
सुनि मुनि-आयसु धावन[4] धाए। चले बेगि बरबाजि लजाए।
अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु[5] कोटि कलपना।
बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव-अभिषेक[7] करहिं बिधि नाना।
माँगहिं हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई।

दो०—एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुर-अनुसासन[8] श्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ ॥ १५८

---

१ ब्रह्माण्ड २ नेत्रों से रहित, अंधा ३ रात्रि ४ दूत ५ अशुभ ६ वहम ७ महादेव की पूजा ८ गुरु की आज्ञा।

‡ पिता के चित्तरूप पपीहा के लिये बादल।

। समीर-बेग[1] हय हाँके । नाँघत सरित सैल बन बाँके ॥
य सोचु बड़ कछु न सोहाई । अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई ॥
: निमेष बरषसम जाई । एहि बिधि भरत नगर नियराई ॥
होहिं नगर पैठारा । रटहिं कुभाँति कुखेत[2] करारा[3] ॥
र सियार बोलहिं प्रतिकूला । सुनि सुनि होइ भरतमन सूला ॥
हत सर सरिता बन बागा । नगर बिसेषि भयावनु लागा ॥
। मृग हय गय जाहिं न जोए । राम-बियोग-कुरोग बिगोए[4] ॥
र-नारि-नर निपट दुखारी । मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी ॥

दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवहिं[5] जोहारहिं जाहिं ।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं ॥१५९॥

र-बाट[6] नहिं जाहिं निहारी । जनु पुर दहँ[7] दिसि लागि दवारी[8] ॥
वत सुत सुनि कैकयनंदिनि । हरषी रबि-कुल-जलरुह-चंदिनि ॥
जि आरती मुदित उठि धाई । द्वारहिं भेंटि भवन लेइ आई ॥
रत दुखित परिवारु निहारा । मानहुँ तुहिन[9] बनजबनु[10] मारा ॥
कई हरषित एहि भाँती । मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ॥
तहि ससोच देखि मनु मारें । पूछति नैहर कुसल हमारें ॥
कल कुसल कहि भरत सुनाई । पूँछी निज-कुल-कुसल भलाई ॥
हु कहँ तात कहाँ सब माता । कहँ सिय रामु लषन प्रिय भ्राता ॥

दो०—सुनि सुतबचन सनेहमय कपटनीर भरि नयन ।
भरत श्रवन मन-सूल-सम पापिनि बोली बयन ॥१६०॥

त तात मैं सकल सवाँरी । भइ मंथरा सहाय बिचारी ॥
छुक काज बिधि बीच बिगारेउ । भूपति सुर-पति-पुर पगु धारेउ ॥

---

१ हवा के सदृश शीघ्र २ बुरे क्षेत्र में ३ काला कौआ ४ पीड़ित ५ चुपचाप चले
जाते हैं ६ रास्ता ७ दसों दिशा ८ अग्नि ९ पाला १० कमलों का वन ।

सुनत भरत भयविवस विषादा । जनु सहमेउ[१] करि केहरिनादा ॥
तात तात हा तात पुकारी । परे भूमितल व्याकुल भारी ॥
चलत न देखन पायेउँ तोही । तात न रामहि सौंपेहु मोही ॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी । कहु पितुमरन-हेतु महतारी ॥
सुनि सुतवचन कहति कैकेई । मरमु पाँछि जनु माहुर[२] देई ॥
आदिहु तें सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदितमन बरनी ॥

दो०—भरतहि बिसरेउ[३] पितुमरन, सुनत राम-बन-गौनु ।
हेतु अपनपउ[४] जानि जिअ, थकित रहे धरि मौनु[५] ॥१६१॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति । मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥
तात राउ नहिं सोचइ जोगू । बिढ़ई सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू ॥
जीवत सकल जनम-फल पाए । अंत अमर-पति सदन[६] सिधाए ॥
अस अनुमानि सोचु परिहरहू । सहित समाज राज पुर करहू ॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाकें छतु[७] जनु लाग अँगारू ॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा । पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा ॥
जौं पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारेसि मोही ॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा । मीनजिअन निति बारि उलीचा ॥

दो०—हंसबंसु[८] दशरथु जनकु राम लखन से भाइ ।
जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ ॥१६२॥

जब तैं कुमति कुमत जिअ ठयेऊ । खंड खंड होइ हृदय न गयेऊ ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा । गरि न जीह, मुँह परेउ न कीरा ॥
भूप प्रतीति[९] तोरि किमि कीन्ही । मरनकाल बिधि मति हरि लीन्ही ॥
बिधिहु न नारि हृदयगति जानी । सकल-कपट-अघ-अवगुन-खानी ॥

---

१ डर गया २ विष ३ भूल गये ४ अपने आपको ५ शान्त ६ स्वर्ग ७ घाव ८ सूर्य वंश ९ विश्वास ।

रल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानै तीयसुभाऊ॥
स को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान-प्रिय नाहीं॥
अति अहित[1] राम तेउ तोही। को तू अहसि[2] सत्य कहु सोही॥
ो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥
दो०—राम-बिरोधी-हृदय[3] तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी[4] बादि कहौं कछु तोहि॥१६३॥
ुनि सत्रुघुन[5] मातुकुटिलाई। जरहिं गात रिस, कछु न बसाई॥
ेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥
लखि रिस भरेउ लषन-लघु-भाई। बरत अनल[6] घृतआहुति पाई॥
ुमगि[7] लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा॥
कूबर टूटेउ, फूट कपारू। दलित दसन[8] मुख रुधिरप्रचारू[9]॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस[10] पावा॥
सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥
दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुखभारु।
कनक-कलप-बर-बेलि-बन[11], मानहुँ हनी तुषारु[12]॥१६४॥
भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई[13]॥
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तनदसा बिसारी॥
मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लषनु दोउ भाई॥
कइकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमित भइ काहे न बाँझा॥
कुलकलंकु जेहि जनमेउ मोही। अपजसभाजन प्रिय-जन-द्रोही॥
को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥

---

१ अनहित २ है ३ राम का है जो विरोधी हृदय (बहु०) ४ पापी ५ शत्रुघ्न ६ अग्नि ७ जोश में आकर या उछल कर ८ टूटे हुये दांतों से ९ मुंह से खून बहने लगा १० बुरा ११ सुवर्ण की सुन्दर कल्पलताओं को १२ पाला १३ मूर्छा।

पितु सुरपुर, बन रघु-बर-केतू । मैं केवल सब अनरथहेतू ॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु-बन-आगी । दुसह-दाह-दुख-दूषन-भागी ॥
दो०—मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि ।
लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६५॥
सरल सुभाय माय हिय लाए । अतिहित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लषन-लघु-भाई । सोकु सनेहु न हृदय समाई ॥
देखि सुभाउ कहत सब कोई । राममातु अस काहे न होई ॥
माता भरतु गोद बैठारे । आँसु पोंछि मृदुबचन उचारे ॥
अजहुँ बच्छु, बलि, धीरज धरहू । कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी । काल-करम-गति अघटित[1] जानी ॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहु दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जाने का तेहि भावा ॥
दो०—पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर ॥१६६॥
मुखप्रसन्न मन रंग न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ॥
चले बिपिन[2] सुनि सिय सँग लागी । रहै न राम-चरन-अनुरागी ॥
सुनतहि लषनु चले उठि साथा । रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ॥
रामु लषनु सिय बनहिं सिधाए । गइउँ न संग न प्रान पठाए ॥
एहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे । तउ न तजा तनु जीव अभागे ॥
मोहि न लाज निज नेहु निहारी । रामसरिस सुत मैं महतारी ॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना । मोर हृदय सत-कुलिस-समाना ॥
दो०—कौसल्या के बचन सुनि, भरतसहित रनवासु ।
ब्याकुल बिलपत[3] राजगृह[4], मानहुँ सोकनिवासु ॥१६७॥

---

१ अटल, जो मिट न सके २ बन ३ बिलाप करता है ४ राज महल में रहने वाले प्राणी मात्र ।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई॥
भाँति अनेक भरत समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए॥
भरतहु मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं॥
छलबिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥
जे अघ मातु-पिता-सुत मारें। गाइगोठ[1] महि-सुर-पुर जारें॥
जे अघ तिय-बालक-बध[2] कीन्हे। मीत महीपति माहुर[3] दीन्हे॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम-बचन-मन-भव[4] कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥

दो०—जे परिहरि हरि-हर-चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कै गति मोहि देउ, बिधि जौं जननी मत मोर॥१६८॥

बेचहिं बेदु धरम दुहि लेहीं*। पिसुन[5] पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेदबिदूषक बिस्वबिरोधी॥
लोभी लंपट[6] लोलुपचारा[7]। जे ताकहिं परधनु परदारा॥
पावौं मैं तिन्ह के गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथपथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहिं न हरि-हर-सुजसु सुहाई॥
तजि श्रुतिपंथ बामपथ चलहीं। बंचक बिरंचि बेषु[8] जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥

दो०—मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मनकाय[9]॥१६९॥

राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रान तें प्यारे॥

---

१ गो-शाला २ स्त्री और बालकों का बध ३ विष ४ मन से पैदा हुये ५ छलि कपटी ७ कर्म, मन, वाणी से झूठे आचरण वाले ८ कपट का भेष बना कर ९ शरी

* 'धनार्थ कुपात्र को वेद पढ़ावे' यह वेचना और 'गाय अथवा पुत्री को वेच' यह धर्म का दुहना है।

छंद—सानी सरल रस मातुबानी सुनि भरतु ब्याकुल भए।
लोचनसरोरुह श्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए ॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की[1]॥

सो०—भरत कमलकर जोरि, धीर-धुरंधर-धीर धरि।
बचनु अमिअ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ॥१७७

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव[2] संमत सबही का
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा
गुर-पितु-मातु-स्वामि-हित-बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जा
उचित कि अनुचित किए बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भा
तुम्ह तौ देउ सरल सिख सोई। जो आचरत[3] मोर भल हो
जद्यपि यह समुझत हौं नीके। तदपि होत परितोषु न जी के
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु दे
उत्तर देउ छमब अपराधू। दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधु

दो०—पितु सुरपुर, सिय राम बन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु ॥१७८॥

हित हमार सिय-पति-सेवकाई। सो हरि लीन्हि मातु कुटिला
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन[4] उपाय मोर हित नाहीं
सोकसमाजु राजु केहि लेखें। लखन-राम-सिय-पद बिनु देखे
बादि[5] बसन बिनु भूषन-भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जाय जप जोग
जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुरा
जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एह

१ असाधारण प्रेम की सीमा २ मन्त्री ३ करने से ४ दूसरा ५ व्यर्थ, जा

मोहि नृपकरि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता[1] बस कहहू ॥

दो०—कैकेइसुअन कुटिल मति, रामबिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस, मोहि से अधम के राज ॥१७९॥

कहौं साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा[2] रसातल[3] जाइहि तबहीं ॥
मोहि समान को पापनिवासू। जेहि लगि सीयराम बनवासू ॥
राय राम कहुँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर[4] कीन्हा ॥
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनौं सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकिय बासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू[5] ॥
राम पुनीत विषयरस रूखे। लोलप भूमिभोग के भूखे ॥
कहँ लागि कहौं हृदय-कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई ॥

दो०—कारन तें कारजु कठिन, होइ दोस नहिं मोर।
कुलिस अस्थि[6] तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥१८०॥

कैकेईभव तनु अनुरागे। पाँवर[7] प्रान अघाइ अभागे ॥
जौं प्रियबिरह[8] प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे ॥
लषन-राम-सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठै अमरपुर पतिहित कीन्हा ॥
लीन्ह बिधवपन, अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू[9] ॥
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू ॥
एहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका[10] ॥
कैकइजठर[11] जनमि जग माहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं ॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥

---

१ मूर्खता से २ पृथ्वी ३ पाताल ४ अमरावती ५ हँसी
* राम से है विमुख, राम विमुख। गत है लाज जिसकी (बहु०), निर्लज्ज
६ हड्डियां ७ नीच ८ प्यारे की जुदाई ९ दुःख १० राज्य ११ कैकेई का पेट।

दो०—ग्रहग्रहीत[1] पुनि वातवस[2], तेहि पुनि बीछी मार[3] ।
तेहि पिआइअ वारुनी[4], कहहु कवन उपचार ॥१८१॥

कैकइसुअन-जोग जग जोई । चतुर विरंचि[5] दीन्ह मोहि सोई ॥
दसरथतनय राम-लघु-भाई । दीन्हि मोहि विधि बादि बड़ाई ॥
तुम्ह सबु कहहु कढ़ावन टीका[6] । रायरजायसु सब कहँ नीका ॥
उतरु देउँ केहि विधि केहि केही । कहहु सुखेन[7] जथारुचि जेही ॥
मोहि कुमातु-समेत विहाई । कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर माहीं । जेहि सियरामु प्रानप्रिय नाहीं ॥
परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू । अदिन[8] मोर नहिं दूषन काहू ॥
संसय[9] सील प्रेमबस अहहू । सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू ॥

दो०—राममातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेखि ।
कहै सुभाय सनेहबस, मोरि दीनता देखि ॥१८२॥

गुर बिबेकसागर जग जाना । जिन्हहिं बिस्व कर-बदर-समाना[10] ॥
मो कहुँ तिलकसाज सज सोऊ । भए बिधि-बिमुख बिमुख[11] सब कोऊ ॥
परिहरि[12] रामुसीय जग माहीं । कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी । अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी ॥
डर न मोहि जग कहिहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥
एकै उर बस दुसह दवारी[13] । मोहि लगि भे सियराम दुखारी ॥
जीवनलाहु लषन भल पावा । सबु तजि रामचरनु मन लावा ॥
मोर जनम रघुबरबन लागी । झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥

दो०—आपन दारुन दीनता[14], कहौं सबहिं सिर नाइ ।
देखे बिनु रघु-नाथ-पद, जिय कै जरनि न जाइ ॥१८३॥

---

१ ग्रहों से ग्रसित २ सन्निपात ३ डंक मारदेय ४ शराब ५ ब्रह्मा ६ राज देना ७ सुख से ८ बुरे दिन ९ सदेह १० हथेली के बेर के समान ११ [illegible] १२ छोड़ कर १३ असहनीय दुःखाग्नि १४ बड़ी गरीबी ।

मुनिहिं बंदि भरतहिं सिरु नाई । चले सकल[1] घर बिदा क
धन्य-भरतु जीवनु जग माहीं । सीलु सनेहु सराहत आ
कहहिं परसपर भा बड़ काजू । सकल चलै कर[2] साजहिं सा
जेहिं राखहिं रहु घर रखवारी । सो जानै जनु गरदन मारी
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू । को न चहै जग जीवन

दो०—जरउ सो संपति-सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद करै न सहस सहाइ[4] ॥१८

घर घर साजहिं बाहन नाना । हरषु हृदय परभात[5] पया
भरत जाइ कर कीन बिचारू । नगरु बाजि गज भवन भंडा
संपति सब रघुपति कै आही । जौं बिनु जतन चलौं तजि ता
तो परिनाम न मोरि भलाई । पापसिरोमनि साइँ[6] दुहा
करै स्वामिहित सेवक सोई । दूखन कोटि देइ किन को
अस बिचारि सुचि सेवक बोले । जे सपनेहु निज धरमु न डो
कहि सब मरमु धरमु सब भाखा । जो जेहि लायक सो तेहि रा
करि सबु जतनु राखि रखवारे । राममातु पहिं भरत सिधा

दो०—आरति जननी जानि सब, भरत सनेह सुजान ॥
कहेउ बनावन पालकी, सजन[8] सुखासन[9] जान ॥१८

चक्कचक्कि[10] जिमि पुर-नर-नारी । चलत प्रात उर आरत भा
जागत सब निसि भयेउ बिहाना[11] । भरत बोलाए सचिव सुजा
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू । बनहिं देब मुनि रामहिं रा
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे । तुरत तुरग रथ नाग सँवा

---

१ सब लोग २ चलने का ३ जान मारी ४ सहायक ५ प्रातः
६ पापियों में सरदार ७स्वामी की सौगंध ८ तैयार करने को ६ सुख+आ
१० चक्रवाक ११ प्रातःकाल ।

...ता अरु अगिनिसमाऊ[1] । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥
...[2] सब वाहन[3] नाना । चले सकल तप-तेज-निधाना ॥
...ोग सब साजि साजि जाना । चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
...का सुभग[4] न जाहिं बखानी । चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी ॥

—सौंपि नगर सुचि सेवकनि, सादर सबहिं चलाइ ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब चले भरतु दोउ भाइ ॥ १८८ ॥

...दरस-बस सब नरनारी । जनु करि करिनि[1] चले तकि बारी[2] ॥
...सिय रामु समुझि मन माहीं । सानुज भरत पयादेहि जाहीं ॥
...सनेह लोग अनुरागे । उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥
...समीप राखि निज डोली । राममातु मृदुबानी बोली ॥
...चढ़हु रथ बलि महतारी । होइहि प्रिय परिवारु दुखारी ॥
...चलत चलिहि सब लोगू । सकल सोक कृस नहिं मग जोगू ॥
...धरि बचन चरन सिरु नाई । रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई ॥
...ा प्रथम दिवस करि बासू । दूसर गोमतितीर निवासू ॥

—पय अहार[1] फल असन[2] एक, निसि भोजन एक लोग ।
करत रामहित नेम ब्रत, परिहरि भूषन भोग ॥ १८९ ॥

...तीर बसि चले बिहाने । शृंगवेरपुर सब नियराने ॥
...चार सब सुने निषादा । हृदय बिचारु करै सबिषादा ॥
...कवनु भरतु बन जाहीं । है कछु कपट भाउ मन माहीं ॥
...जिय न होत कुटिलाई । तौ कत लीन्ह संग कटकाई[10] ॥
...सानुज रामहिं मारी । करौं अकंटक[11] राजु सुखारी ॥

भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु[1] अब जीवनुहानी[2]
सकल सुरासुर[3] जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा
का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं विषबेलि अमियफल फरहीं

दो०—अस बिचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसहु[4] बोरहु तरनि[5], कीजिअ घाटारोहु[6] ॥१९०॥

होहु सँजोइल[7] रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समरु मरन पुनि सुर-सरि-तीरा। रामकाजु छनभंगु[9] सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइअ मीचू[10]॥
स्वामिकाज करिहहुँ रन रारी[11]। जस धवलिहउ भुवन दस चारी॥
तजौं प्रान रघु-नाथ-निहोरे[12]। दुहूँ हाथ मुद मोदक[13] मोरे॥
साधुसमाज न जा कर लेखा। राम भगत महँ जासु न रेखा॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी-जौबन-बिटप कुठारू[14]॥

दो०—बिगतविषाद निषादपति, सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु ॥१९१॥

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावै करषा॥
चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचै[15] रारी॥
सुमिरि राम-पद-पंकज-पनहीं। भाथी बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥
अँगरी[16] पहिरि कूँड़ि[17] सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल-सम[18] करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥

१ बुराई २ मृत्यु ३ सुर+असुर ४ पतवार ५ नाव ६ घाट रोक
७ सावधान ८ सामिग्री ९ क्षण में जो नष्ट होजाय (बहु०) १० मृत्यु ११
१२ रामके लिये १३ लड्डू १४ माता के यौवन रूप वृक्ष की कुल्हाड़ी।
१५ अच्छा लगता था १६ कवच १७ लोहे की टोपी १८ सुधारना।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुहराउतहिं जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहि॥१६२॥

रामप्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड-मुंड-मय मेदिनि[1] करहीं॥
दीख निषादनाथ भल टोलू[2]। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू[3]॥
एतना कहत छींक भई बाएँ। कहेउ सगुनिअन्ह खेत[4] सुहाएँ॥
बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहिं मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहिं भरत मनावन जाहीं। सगुन कहैं अस बिग्रहु नाहीं॥
सुनि गुह कहै नीक कह बूढ़ा। सहसा[5] करि पछिताहिं बिमूढ़ा[6]॥
भरत-सुभाव सील बिनु बूझे। बड़ि हितहानि जानि बिन जूझे॥

दो०—गहहु घाट भट सिमिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ॥
बूझि मित्र अरि मध्यगति, तब तस करिहौं आइ॥१६३॥

लखब सनेहु सुभाय सुहाए। बैरु प्रीति नहिं दुरै दुराए॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे॥
मीन पीन[7] पाठीन[8] पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगलमूल सगुन सुभ पाए॥
देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहिं दंडप्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा॥
रामसखा[9] सुनि स्यंदनु त्यागा। चले उतरि उमगत[10] अनुरागा॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥

---

१ धरती २ जमाव ३ लड़ाई के बाजे ४ सगुन ५ शीघ्रता ६ मूर्ख ७ मोटी ८ मछली ९ राम का सखा गुह १० (उमंग) लहर में आकर।

दो०—करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ ॥ १९४ ॥

भेंटत भरत ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला । सुर सराहिं तेहि बरसहिं फूला
लोक वेद सब भाँतिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा
तेहि भरि अंक राम-लघु भ्राता । मिलत पुलकपरिपूरित गाता
राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहिं न पापपुंज समुहाहीं
एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जगु पावन कीन्हा
करमनास-जल[1] सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहिं धरई
उलटा नाम जपत जग जाना । *बालमीकि भए ब्रह्म समाना

दो० स्वपच सबर खस जमन जड़, पाँवर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥ १९५ ॥

नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई । केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई
रामनाम महिमा सुर कहहीं । सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं
रामसखहिं मिलि भरत सप्रेमा । पूंछी कुसल सुमंगल पेमा
देखि भरत कर सीलु सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा । भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी । बिनय सप्रेम करत कर जोरी
कुसलमूल पदपंकज पेखी । मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें

दो०—समुझि मोरि करतूत कुलु, प्रभु महिमा जिअ जोइ ॥
जो न भजइ रघुबीर-पद, जग बिधि बंचित[2] सोइ ॥ ९६

---

१ कर्म नाशा का जल सब पुन्यों को नष्ट करदेता है २ विधाता ने व्यर्थ पैदा किय

* बालकपन में बाल्मीकि बहेलियों के साथ रहकर वैसेही हो गये थे । एक समय सप्तऋषियों को लूटने दौड़े तब उन्होंने इनको समझाकर ज्ञान दिया और उनके सत्संग से बड़े विद्वान और भक्त ईश्वर हो गये ।

कपटी कायरु कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर[1] सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयेउँ भुवन-भूषन[2] तबही तें*॥
देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत-लघु-भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारीं रानी॥
जानि लषनसम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा[3]॥
निरखि निषादु नगर-नर-नारी। भए सुखी जनु लषनु निहारी॥
कहहिं लहेउ एहि जीवन-लाहू। भेंटउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज-भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥

दो०—सनकारे[4] सेवक सकल चले स्वामि-रुख पाइ।
घर तरु तर सर[5] बाग बन बास बनाएन्हि जाइ॥१९७॥

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेह सब अंग सिथिल तब॥
सोहत दिए निषादहि लागू[6]। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू॥
एहि बिधि भरत सेन सब संगा। दीख जाइ जगपावनि गंगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥
करहिं प्रनाम नगर-नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी। रामचंद्र-पद-प्रीति न थोरी॥
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल-सुखद-सेवक-सुर-धेनू॥
जोरि पानि बर माँगहु एहू। सीय - राम - पद-सहज-सनेहू॥

दो०—एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन[7] पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ॥१९८॥

---

१ न तो लोक ही में हमारी कुछ गणना है न वेद में ही हमारी कुछ पहुँच है
२ प्रतिष्ठित ३ वर्ष ४ सैनकारे ५ सर में वास बनाया इसके दो अर्थ हो सकते हैं एक तो लखण से सरके किनारे पर वास, अथवा वाच्य में सर में पड़ी हुई नावं पर वास बनाया। ६ साथ लिये हुए ७ आज्ञा * तद्गुण अलकार।

नहिं प्रसन्नमुख मानस[1] खेदा । सखि संदेह होइ एहि भेदा ॥
तासु तरक[2] तियगन मनमानी । कहहिं सकल तोहि सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी[3] । बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥
कहि सप्रेम सब कथा-प्रसंगू । जेहि बिधि राम-राज-रस-भंगू[4] ॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी । सील सनेह सुभाय सुभागी ॥

दो०—चलत पयादे खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु ।
जात मनावन रघुबरहिं, भरतसरिस को आजु ॥ २२३ ॥

भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख-दूषन-हरनू ॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई । रामबंधु अस काहे न होई ॥
हम सब सानुज भरतहि देखे । भइन्ह धन्य जुवतीजन लेखे ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं । कैकई-जननि-जोगु सुतु नाहीं ॥
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन । बिधि सबु कीन्ह हमहिं जो दाहिन ॥
कहँ हम लोक-बेद-बिधि हीनी । लघुतिय कुल-करतूति मलीनी ॥
बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा । कहँ येह दरसु पुन्यपरिनामा ॥
अस अनंदु अचिरजु प्रति ग्रामा । जनु मरुभूमि[6] कलपतरु जामा ॥

दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ, मग-लोगन्ह कर भागु ।
जनु सिंहल[7]बासिन्ह भयेउ, बिधिबस सुलभ प्रयागु ॥ २२४ ॥

निज गुन-सहित राम-गुन-गाथा । सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा । निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी । बैखानस[8] बटु[9] जती उदासी ॥
करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही । केहि बन लखनु रामु बैदेही ॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं । भरतहि देखि जनमफलु लहहीं ॥

---

१ मानसिक २ (तर्क) ३ सत्य हुई ४ बिगाड़ ५ कृपालु ६, मारवाड़ मरुस्थल ७ लंका ८ वानप्रस्थ ९ ब्रह्मचारी ।

जन कहहिं "कुसल[1] हम देखे"। ते प्रिय राम-लषन-सम लेखे ॥
विधि बूझत सबहिं सुबानी। सुनत राम बन-बास-कहानी ॥

दो०—तेहि बासर बसि प्रातहीं, चले सुमिरि रघुनाथ ।
रामदरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२२५॥

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुखदाहू ॥
करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेहसुरा[2] सब छाके ॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन[3] पेमबस बोलहिं ॥
रामसखा तेहि समय देखावा। सैलसिरोमनि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित-पय-तीरा। सीयसमेत बसहिं दोउ बीरा ॥
देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा ॥
प्रेममगन अस राजसमाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू ॥

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकै न सेषु ।
*कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु, अह-मम-मलिन-जनेषु ॥२२६॥

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें[4] ॥
जल थल देखि बसे, निसि बीते। कीन्ह गवनु रघु-नाथ पिरीते ॥
उहाँ रामु रजनी अवसेषा[5]। जागे सीय सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथबियोग-ताप तन-ताए[6] ॥
सकल मलिनमन दीन दुखारी। देखीं सासु आन-अनुहारी[7] ॥
सुनि सियसपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोचबिमोचन ॥
लषन, सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि[8] साधु सनमाने ॥

---

१ अच्छी तरह. २ स्नेह रूपी मद ३ लड़खड़ाती बातें ४ दिन ढले ५ थोड़ी रात रहे ६...ताये हुये ७ और ही भांति ८ पुर + अरि = महादेव

* कवि को ऐसा दुस्तर है जैसा कि अहंकार से मलिन मनुष्यों को ब्रह्म सुख

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत रहे।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आश्रम गए॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित भए।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥
सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरदसरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह-जल॥२२७॥
बहुरि सोच बस भे सियरवनू। कारन कवन भरतआगवनू
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी
सो सुनि रामहिं भा अति सोचू। इत पितुवच उत बंधुसँकोचू
भरतसुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभुचित हिततिथि[1] पावन नाहीं
समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महँ साधु सयाने
लषनु लखेउ प्रभु-हृदय खँभारू[2]। कहत समयसम नीतिबिचारू
बिनु पूँछे कछु कहौं गोसाईं। सेवकुसमय न ढीठ ढिठाई
तुम्ह सर्बज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहौं अनुगामी
दो०—नाथ सुहृद सुठि सरलचित सील-सनेह-निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान॥२२८॥
बिषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोहबस होहिं जनाई[3]
भरतु नीतिरत साधु सुजाना। प्रभु-पद-प्रेम सकल जगु जाना
तेऊ आजु राजपदु पाई। चले धरममरजाद मेटाई
कुटिल कुबंध कुअवसरु ताकी। जानि राम बनवास एकाकी[4]
करि कुमंत्रु[5] मन साजि समाजू। आए करै अकंटक[6] राजू
कोटि प्रकार कलपि[7] कुटिलाई। आए दलु बटोरि दोउ भाई
जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ-बाजि-गजाली[8]
भरतहि दोष देइ को जाए[9]। जग बौराइ राजपद पाए

---

१ (स्थिति) २......में खलबली ३ अपने को दिखाते हैं अर्थात घमंड करते हैं ४ अकेला, असहाय ५ षड्यंत्र ६ निर्विघ्न ७ सोचकर ८ हाथी ९ व्यर्थ।

दो०—*ससि गुर-तिय-गामी, नहुषु चढेउ भूमि-सुर-जान ।
लोकबेद तें बिमुख भा अधम न † बेन समान ॥२२८॥

‡हसबाहु ×सुरनाथ ¶त्रिसंकू । केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥

---

* चन्द्रमा ने त्रिलोक को जीत कर राजसूय यज्ञ किया और अपनी गुरु पत्नी हर लिया । देवताओं ने भी चन्द्रमा का ही पक्ष लिया, तब ब्रह्मा ने बीच में तारा बृहस्पति को दिला दी और चन्द्र का पुत्र बुध, जो तारा से पैदा था पर ही रहा ।

† बेनु जन्म से ही दुष्ट-प्रकृति और उपद्रवी था । पिता दुखी हो वन चला ।। तब तो वह राज्य पा, मदान्ध हो, ऋषि मुनि आदि से हठात् ईश्वरोपासना ॥, उनको अपनी पूजा कराने को बाधित करने लगा । मुनियों ने बहुत मझाया पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, अन्त में उन्होंने भस्म कर दिया ।

‡ एक समय जमदग्नि ने राजा सहस्रावाहु का—जो शिकार को आया हुआ ससैन्य स्वागत किया । राजा आश्चर्य में आगया कि मुनि पर इतनी सम्पत्ति ां से आई । और यह जानकर कि सारा वैभव कामधेनु का है, उसे मांगने लगा । षि के न देने पर, उन्हें मार कर गाय ले गया । कामधेनु तो उससे छूट कर ों को चली गई और इधर ऋषि के पुत्र परशुराम ने युद्ध में सहस्रावाहु को ार कर पृथ्वी को २१ बार क्षत्रीहीन कर दिया ।

× एक बार इन्द्र ने राजमद में आ गुरु बृहस्पति का उचित आदर नहीं किया रुष्ट होगये । अब तो दैत्यों ने चढ़ाई कर देवताओं को मार स्वर्ग से निकाल या । तब इन्द्र ने ब्रह्मा की सम्मति से विश्वरूप को अपना पुरोहित बना अपनी षा की ।

¶ त्रिशंकु सदेह स्वर्ग जाना चाहता था । उसने, वसिष्ठ व उनके पुत्रों से नोरथ सिद्धि न होते देख विश्वामित्र द्वारा स्वर्ग गया । वहां से देवताओं ने ारा दिया और अधपर लटकता रह गया ।

भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रंच[1] न राखब काऊ ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई । निदरे[2] राम जानि असहाई ॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी । समर[3] सरोष राममुख पेखी ॥
एतना कहत नीतिरस भूला । रन रस-बिटप[4] पुलक मिस फूला ॥
प्रभुपद बंदि सीसरज राखी । बोले सत्य सहज बलु भाखी ॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहिं उपचरा[5] न थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारें । नाथसाथ धनु हाथ हमारें ॥

दो०—छत्रिजाति रघु-कुल-जनमु रामअनुग जगु जान ।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरिसमान ॥२२०॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा । मनहु बीररस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा[6] । साजि सरासनु सायकु[7] हाथा ॥
आजु रामसेवक जसु लेऊँ । भरतहिं समर सिखावन देऊँ ॥
रामनिरादर कर फलु पाई । सोवहु समरसेज दोउ भाई ॥
आइ बना भल सकल समाजू । प्रगट करौं रिस पाछिलि आजू ॥
जिमि करिनिकर[8] दलै[9] मृगराजू । लेइ लपेटि लवा[10] जिमि बाजू ॥
तैसेहि भरतहि सेनसमेता । सानुज निदरि निपातौं[11] खेता ॥
जौं सहाय कर संकरु आई । तउ मारौं रन रामदोहाई ॥

दो०—अतिसरोष माषे लपनु, लखि सुनि सपथ[12] प्रवान ।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान[13] ॥२२१॥

---

१ थोड़ा भी २ अपमान किया ३ लड़ाई ४ वीर रस रूपी वृक्ष ५ छेड़ ६ तरकस ७ तीर ८ हाथियों के झुंड ९ नष्ट करता है १० एक छोटी चिड़िया होती है ११ नष्ट कर डालूँ १२ सौगंद १३ भड़भड़ा कर दूर करें ।

जगु भयमगन[1] गगन भइ बानी। लषन-बाहु-बलु बिपुल[2] बखानी ॥
तात प्रतापप्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकै, को जाननिहारा ॥
अनुचित उचित काज किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सब कोऊ ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध 'ते बुध नाहीं' ॥
सुनि सुरबचन लषन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई ॥
जो अँचवत[3] माँतहिं[4] नृप तेई। नाहिन साधु-सभा जेहि सेई ॥
सुनहु लषन भल भरतसरीसा। बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

दो०—भरतहि होइ न राजमदु, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजीसीकरनि[5], छीरसिंधु बिनसाइ[6] ॥२३२॥

तिमिर[7] तरुन तरनिहि[8] मकु गिलई[9]। गगन[10] मगन मकु मेघहि[11] मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी[12]। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी[13] ॥
मसकफूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहि भाई ॥
लषन तुम्हार सपथ पितुआना। सुचि सुबंधु नहिं भरतसमाना ॥
सगुनु पीरु अवगुनजल ताता। मिलइ रचै परपंच[14] बिधाता ॥
भरत हंस रवि-बंस-तड़ागा[15]। जनमि कीन्ह गुन-दोष-बिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी ॥
कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ। पेमपयोधि[16] मगन रघुराऊ ॥

दो०—सुनि रघुबरबानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु[17] ॥२३३॥

---

१ भयभीत २ अथाह ३ पीता है ४ पागल ५ कांजी की बूंद ६ नष्ट करती है ७ अँधेरा ८ दो पहर के सूर्य को ९ निगल जाय १० आकाश में ११ बादल १२ अगस्तमुनि १३ पृथ्वी १४ संसार १५.............तालाब १६ प्रेम का समुद्र १७ कृपा का घर।

जौं न होत जग जनम भरत को । सकल-धरम-धुर-धरनि-धरत को ॥
कवि-कुल-अगम भरत-गुन-गाथा । को जानै तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
लषन राम सिय सुनि सुरबानी । अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए[1] । मंदाकिनी पुनीत नहाए ॥
सरितसमीप राखि सब लोगा । माँगि मातु-गुर-सचिव नियोगा[2] ॥
चले भरत जहँ सियरघुराई । साथ निषादनाथ लघुभाई ॥
समुझि मातुकरतब सकुचाहीं । करत कुतरक कोटि मन माहीं ॥
राम-लषनु-सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥

दो०—मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु कहहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥२३४॥

जौं परिहरहिं मलिन-मनु जानी । जौं सनमानहिं सेवकु मानी ॥
मोरे सरन रामहि की पनहीं[3] । राम सुस्वामि दोष सब जनहीं[4] ॥
जग जसभाजन चातक मीना । नेम पेम निज[5] निपुन नबीना[6] ॥
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह सिथिल सब गाता ॥
फेरति मनहिं मातुकृत खोरी । चलत भगतिबल धीरजधोरी ॥
जब समुझत रघुनाथसुभाऊ । तब पथ परत उताइल[7] पाऊ ॥
भरतदसा तेहि अवसर कैसी । जलप्रवाह जल-अलि-गति[8] जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु ।
मिटिहि सोच होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु[9] ॥२३५॥

सेवक बचन सत्य सब जाने । आश्रम निकट जाइ नियराने[10] ॥
भरत दीख वन-सैल-समाजू । मुदित छुधित[11] जनु पाइ सुनाजू ॥

---

१ साथी २ ...... आज्ञा ३ जूता (उपानह) ४ सेवक का अर्थात् मेरा ५ अपना ६ नये ७ जल्दी जल्दी ८ पानी के भौंरे की दशा ९ दुःख १० पास आये ११ भूखा

ईति भीति[1] जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहि भरतगति तेहि अनुहारी॥
रामबास बनसंपति भ्राजा[2]। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन[3] सुहावन पावन देसू॥
भट[4] जम-नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदरि रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। रामचरन-आश्रित[5] चित चाऊ[6]॥

दो०—जीति मोह-महिपालु-दल[7] सहित बिबेक भुआलु॥
करत अकंटक[8] राजु पुर सुख संपदा सुकालु॥२३६॥

बनप्रदेस मुनिबास घनेरे। जनु पुर नगर गाऊँगन खेरे[9]॥
बिपुल[10] बिचित्र बिहँग मृग नाना। प्रजासमाजु न जाइ बखाना॥
खँगहा[11] करि*हरि[12] बाघ बराहा[13]। देखिमहिष[14] बृष[15] साजुसराहा।
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥
झरना झरहिं, मत्तगज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिधि बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदितमन॥
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा॥
बेल बिटप तृन सफल सफूला। सबु समाजु मुद-मंगल-मूला॥

दो०—रामसैल सोभा निरखि, भरतहृदय अतिप्रेमु।
तापस तपफल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु॥२३७॥

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअ बिटपबिसाला। पाकरि[16] जंबु[17] रसाल[18] तमाला[19]॥

---

१ ईत का डर, ईत ६ हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसक टीढी, शुक और समीपवर्ती राजाओं की चढ़ाई, ताप ३ हैं:—दैहिक, दैविक, भौतिक। २ शोभित है ३ जङ्गल ४ वीर ५ सहारे से ६ उत्साह है ७ मोहरूप राजा के दल ८ बेखटके ९ पुराने बसे हुए गाँव १० बहुत ही ११ गेंडा १२ सिंह १३ सूअर १४ भैंस १५ बैल १६ पापरी १७ जामुन १८ आम १९ एक पेड़ * हाथी।

तिन्ह तरुवरन्ह मध्य बटु[1] सोहा । मंजु बिसाल देखि मन मोहा ॥
नील सघन[2] पल्लव फल लाला । अविरल[3] छाँह सुखद सब काला ॥
मानहुँ तिमिर-अरुन-मय रासी । बिरची बिधि सकोलि सुखमा[4] सी ॥
ए तरु सरितसमीप गोसाईं , रघुवर परनकुटी जहँ छाईं ॥
तुलसी तरुवर बिबिधि सुहाए । कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषन लगाए ॥
बटछाया बेदिका बनाई । सिय निज-पानि-सरोज सुहाई ॥

दो०—जहाँ बैठि मुनि-गन-सहित, नित सिय राम सुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम[5] निगम[6] पुरान ॥२३८॥

सखावचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनामु चले दोउ भाई । कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥
हरषहिं निरखि राम-पद अंका[7] । मानहुँ पारसु पायेउ रंका ॥
रजसिर धरि हियनयनन्हि लावहिं । रघुवर-मिलन-सरिस सुख-पावहिं ॥
देखि भरतगति अकथ अतीवा[8] । प्रेममगन मृग ,खग जड़ जीवा ॥
सखहिं सनेहबिवस मग भूला । कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ॥
निरखि सिद्ध साधक -अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को । अचर[9] सचर[10], चर अचर करत को ॥

दो०—पेम अमिअ मंदरु[11] बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर* ।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु-हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥

सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लषन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु-आश्रम पावन । सकल-सु-मंगल सदन सुहावन ॥
करत प्रवेस मिटे दुखदावा । जनु जोगी परमारथु पावा ॥
देखे भरत लषन प्रभु आगे । पूछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे । तून कसे, कर सर, धनु काँधे ॥

---

१ बरगद २ घना ३ सर्वदा रहने वाली ४ सुन्दरता ५ शास्त्र ६ वेद ७ निशान ८ अत्यंत अकथनीय ९ स्थिर १० चलने वाले ११ मन्दराचल पर्वत * गहरा समुद्र ।

दी पर मुनि-साधु-समाजू। सीयसहित राजत रघुराजू॥
लकल बसन[1] जटिल[2] तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रतिकामा॥
रकमलनि धनुसायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥

दो०—लसत मंजु मुनि-मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ज्ञानसभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंदु॥ २४०॥

ानुज[3] सखा समेत मगन मन। बिसरे[4] हरष-सोकु-सुख-दुख-गन॥
ाहि[5] नाथ कहि पाहि गोसाँई। भूतल परे लकुट[6] की नाँई॥
बचन सप्रेम लषन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जिय जाने॥
ंधुसनेह सरस[7] एहि ओरा। इत साहिबसेवा बस जोरा॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत[8] बनई। सुकबि लषनमन की गति भनई[9]॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग[10] जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

दो०—बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान[11]॥२४१॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल-अगम करम मन बानी॥
परम-प्रेम-पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति[12] बिसराई॥
कहहु सपेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि-मति अनुसरई॥
कविहिं अरथ आखर[13] बलु-साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥
अगमसनेह भरत-रघुबर को। जहँ न जाइ मनु विधि-हरि-हर को॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाँड़रताँती[14]॥
मिलनि बिलोकि भरत-रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥

---

१ छाल के वस्त्र (२) जटा रखाये हुये ३ स+अनुज, भाई के साथ ४ दूर होगये ५ रक्षा करो ६ लकड़ी ७ स+रस, रस युक्त, प्रेम ८ छोड़ते ९ कहता है १० पतंग ११ अपनपे को १२ (अहम्+इति) अहंकार १३ अक्षर १४ भेड़ (ऊन) की तांत।

समुझाए सुरगुरु जड़ जागे[1] । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम ।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४२॥

भेंटेउ लषन ललकि[2] लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सियपद-पदुम-परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए । सिर करकमल परसि बैठाए ॥
सीय असीस दीन्हि मन माहीं । मगन-सनेह देहसुधि नाहीं ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर[3] बीता ॥
कोउ किछु कहै न कोउ किछु पूछा । प्रेम भरा मन निज-गति-छूछा ॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुरलोग ।
सेवक सेनप[4] सचिव[5] सब, आए बिकल-बियोग ॥२४३॥

सीलसिंधु सुनि गुरु आगवनू । सियसमीप राखे रिपुदवनू ॥
चले सबेग राम तेहि काला । धीर-धरम-धुर दीनदयाला ॥
गुरहि देखि सानुज अनुरागे । दंडप्रनाम करन प्रभु लागे ॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि तें दंडप्रनामू ॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत[6] सनेह समेटा ॥
रघुपति—भगति सुमंगल मूला । नभ सराहिं सुर बरषहिं फूला ॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ बसिष्ठसम को जग माहीं ॥

दो०—जेहि लखि लषनहुँ तें अधिक, मिले मुदित मुनिराउ ।
सो सीता-पति-भजन को, प्रगट प्रतापप्रभाउ ॥२४४॥

आरत लोग राम सबु जाना । करुनाकर सुजान भगवाना ॥

---

१ ज्ञान हुआ २ प्रेम के साथ जल्दी करके ३ अपने डर ४ सेन+प=सेनापति ५ मंत्री ६ गिरे हुए ।

जेहि भाय रहा-अभिलाखी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख[1] राखी॥
नुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु-दारुन-दाहू॥
इ बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि[2] एक रवि छाहीं॥
लि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
खी राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलिअवलीं[3] हिम[4] मारीं॥
थम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति-मति भेई॥
ग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी[5]॥

दो०—भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोषु।
अब ईसआधीन जगु, काहु न देइअ दोषु॥२४५॥

गुर-तिय-पद बंदे दुहुँ भाई। सहित बिप्रतिय जे सँग आई॥
गंग-गौरि-सम सब सनमानीं[6]। देहिं असीस मुदित मृदुबानी॥
गहि पद लगे सुमित्राअंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
पुनि जननीचरननि दोउ भ्राता। परे पेम- ब्याकुल सब गाता॥
अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह-सलिल[7] अन्हवाए॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू॥
मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ। गुरुसन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीसनियोगू[8]। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू॥

दो०—महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिये साथ।
पावन आश्रम गवनु किए भरत लषन रघुनाथ॥२४६॥

सीय आइ मुनि-वर पग लागी। उचित असीस लही मनमाँगी॥
गुरपतिनिहिं मुनि तियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता॥
बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन[10] लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल जब सीय निहारीं। मूँदे नयन सहमि सुकुमारीं॥

---

१ इच्छा २ करोड़ों घड़ो में ३ अच्छी वेलों की पाँति ४ बर्फ ५ दोष
६ आदर किया ७ स्नेहरूपी पानी ८ मुनि की आज्ञा १० आशीर्वाद।

परी बधिकवस[1] मनहुँ मराली[2]। काह कीन्ह करतार कुचाली।
तिन्ह सिय निरखि निपट[3] दुख पावा। सो सब सहिय जो दैउ सहावा॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील-नलिन-लोयन[4] भरि नीरा[5]॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना[6] महि छाई॥

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं पेमबस, रहिअहु भरी सोहाग॥२४७॥

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुर आनी॥
कहि जगगति मायिक[7] मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ[8] गाथा॥
नृप कर सुर-पुर-गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मरनहेतु निजनेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर-धुर-धारी॥
कुलिसकठोर[9] सुनत कटु बानी। बिलपत लषन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ[10] आजू॥
मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रतु निरंबु[11] तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा॥

दो०—भोरु भए रघुनंदनहिं जो मुनि आयेसु दीन्ह।
श्रद्धा[12] भगति-समेत प्रभु सो सब सादर कीन्ह॥२४८॥

करि पितुक्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक-तम-तरनी[13]॥
जासु नाम पावक अघतूला[14]। सुमिरत सकल-सु-मंगल-मूला॥
सुद्ध सो भयेउ साधु संमत अस। तीरथआवाहन[15] सुरसरि जस॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते[16]॥

---

१ बहेलिया के वश में २ हंसिनी ३ बिलकुल ४ नीले कमल के समान नेत्र ५ (नीर) पानी ६ शोक ७ माया सबंधी ८ मोक्ष की कथा ९ वज्र से भी कठोर १० मृत्यु ११ निर्जल व्रत १२ (श्रद्धा) आदरणीय प्रेम १३ पाप रूपी अंधकार के लिये जो सूर्यरूप हैं १४ पाप रुई के तुल्य है १५ बुलाना १६ प्यारे

ोग सब निपट दुखारी । कंद - मूल - फल- अंबु - अहारी ॥
भरतु सचिव सब माता । देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥
मेत पुर धारिअ पाऊ । आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
कहेउँ सब कियउँ ढिठाई । उचित होइ तस करिअ गोसाईं ॥

—धर्मसेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम ।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ विश्राम ॥२४९॥

बचन सुनि सभय समाजू । जनु जल निधि महुँ विकल जहाजू ॥
गुरगिरा सु-मंगल - मूला । भयेउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥
प्रय तिहुँ काल नहाहीं । जो बिलोकि अघओघ[1] नसाहीं ॥
मूरति लोचन भरि भरि । निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥
-सैल - बन देखन जाहीं । जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥
ना झरहिं सुधासम बारी[2] । त्रि-विध-ताप-हर त्रिविध बयारी ॥
प बेलि तृन[3] अगनित जाती । फल प्रसून[4] पल्लव बहु भाँती ॥
सिला सुखद तरु छाहीं । जाइ बरन बन छवि केहि पाहीं ॥

०—सरनि सरोरुह जल-विहँग[5] कूजत गुंजत भृंग ।
बैरविगत विहरत विपिन मृग विहंग बहुरंग ॥२५०॥

किरात भिल्ल बनवासी । मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी ॥
भरि परनपुटी[6] रचि रूरी । कंद मूल फल अंकुर जूरी[7] ॥
हिं देहिं करि बिनय प्रनामा । कहि कहि स्वादुभेदु गुन नामा ॥
लोग बहु मोल न लेहीं । फेरत राम दोहाई देहीं ॥
हिं सनेहमगन मृदुबानी । मानत साधु पेम पहिचानी ॥
सुकृती हम नीच निषादा । पावा दरसनु रामप्रसादा ॥
हिं अगम अति दरसु तुम्हारा । जस मरुधरनि देव-धुनि-धारा ॥
कृपाल निषाद नेवाजा । परिजन प्रजउ चहिय जस राजा ॥

पापों का समूह २ पानी ३ घास ४ फूल ५ पक्षी ६ दोना ७ इकट्ठा ।

दो०—यह जिय जानि सँकोचु तजि, करिअ छोहु[1] लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर[2] लेहु॥ २५१॥

तुम्ह प्रिय पाहुन[3] बन पगु धारे। सेवाजोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं। ईंधनु पात किरात मिताई॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन[4] बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव-गन-घाती[5]। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि[6], नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघु-नंदन दरस प्रभाऊ॥
जब तें प्रभु-पद-पदुम निहारे। मिटे दुसह-दुख-दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

छंद—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय-राम-चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नरनारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघु-बंस-मनि की लोह लै नौका[*] तिरा॥

सो०—बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर[8] मोर, भए पीन[9] पावस[10] प्रथम॥ २५२॥

पुरजन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष* बनाई। सादर करै सरिस सेवकाई॥
लखा न मरमु राम बिनु काहू। माया सब सियमाया माहू[11]॥
सीय सासु सेवा-बस कीन्ही। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही॥
लखि सिय-सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहिं जाँचति[12] कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु[13] न देई॥

१ कृपा २ अंकुआ ३ अतिथि ४ पात्र ५ जीवों का नाश करने वाले ६ कमर में फेंट ७ नाव ८ मेंढक ९ हृष्ट पुष्ट १० बरसात ११ बीच १२ मांगती १३ मृत्यु + लोकोक्ति* कई रूप।

बेद बिदित कवि कहहीं । राम-बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
सउ सब के मन माहीं । राम गवँन[1] बिधि अवध कि नाहीं ॥

—निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुचि सोच ।
नीच कीच बिच मगन[2] जस, मीनहिं सलिल सँकोच ॥२५३॥

मातुमिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली[3] ॥
बिधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत[4] उपाउ न एकू ॥
स फिरहिं गुरु आयेसु मानी । मुनि पुनि कहब रामरुचि जानी ॥
कहहुँ बहुरहिं रघुराऊ । रामजननि हठ करबि कि काऊ ॥
अनुचर कर केतिक बाता । तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता ॥
ठ करौं त निपट कुकरमू । हरगिरि[5] तें गुरु सेवकधरमू ॥
जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहिं रैनि-बिहानी[6] ॥
नहाइ प्रभुहिं सिर नाई । बैठत पठए रिषय बोलाई ॥

—गुर-पद-कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५४॥

मुनिबर समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ।
धुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु स्वबस[7] भगवानू ॥
सिंध पालक श्रुति सेतू । रामजनमु जग-मंगलहेतू ॥
पितु-मातु-बचन-अनुसारी । खल-दलु-दलन देव-हित-कारी ॥
प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न रामसम जान जथारथु[8] ॥
हरि हरु ससि रबि दिसिपाला[9] । माया जीव करम कुलि-काला[10] ॥
प[11] महिप[12] जहँ लगि प्रभुताई । जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥
बिचार जिय देखहु नीकें । रामरजाइ सीस सबही कें ॥

---

१ जाना २ डूबी हुई ३ पकी हुई धान की खेती ४ दिखाई देता ५ कैलाश
६ रात्रि बीत गई ७ स्वाधीन ८ वास्तव ९ दिगपाल १० सम्पूर्ण समय
शेषनाग १२ राजा ।

दो०—राखैं राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोइ ॥

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू । मंगल-मोद-मूल मगु ए
केहि विधि अवध चलहिं रघुराऊ । कहहु समुझि सोइ करिअ उ
सब सादर सुनि मुनि-बर-बानी । नय[1] परमारथ स्वारथ सा
उतरु न आव लोग भए भोरे । तब सिरु नाइ भरत कर जो
भानुबंस भए भूप घनेरे । अधिक एक तें एक बड़े
जनम हेतु सब कहँ पितु माता । करम सुभासुभ देइ बिधा
दलि[2] दुख सजइ[3] सकल कल्याना । अस असीस राउरि जगु जा
सोइ गोसाइँ बिधि गति जेहि छेकी[4] । सकै को टारि टेक जो टे

दो०—बूझिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभाग ।
सुनि सनेह-मय-बचन गुर, उर उमगा अनुराग ।२५६

तात बात फुरि राम कृपाहीं । रामबिमुख सिधि सपनेहु नाहीं
सकुचौं तात कहत एक बाता । अरध तजहिं बुध सरबस जाता
तुम्ह कानन गवँनहु दोउ भाई । फेरिअहिं लषन सीय रघुराई
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता । भे प्रमोद--परि--पूरन गात
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा । जनु जिय राउ[5] राम भए राजा
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी । सम दुख सुख सब रोवहिं रानी
कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे । फलु जग जीवन्ह अभिमत[6] दीन्हे
कानन करौं जनम भरि बासू । एहि तें अधिक न मोर सुपास

दो०—अंतरजामी रामु सिय, तुम्ह सरबग्य सुजान ।
जौं फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रमान ॥२५७

---

१ नीति २ नाश करना ३ करती है ४ उल्लङ्घन किया ५ राजा दश
जीवित होगये ६ इच्छित ।

तबचन सुनि देखि सनेहू। सभासहित मुनि भयेउ विदेहू ॥
त-महा-महिमा जलरासी। मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला[1] सी ॥
चह पार जतनु हिय हेरा[2]। पावति नाव न बोहित बेरा[3] ॥
उर करहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि[4] कि सिंधु समाई ॥
त मुनिहि मनभीतर भाए। सहित समाज राम पहि आए ॥
भु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि-अनुसासनु ॥
ले मुनिवरु वचन विचारी। देस-काल-अवसर-अनुहारी ॥
नहु राम सरवग्य सुजाना। धरम-नीति-गुन-ज्ञान-निधाना[5] ॥

दो०—सब के उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन-जननी-भरत-हित, होइ सो कहिअ उपाउ ॥२५८॥

भरत कहहिं विचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपुन दाऊ[6] ॥
सुनि मुनिवचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥
कर हित रुख राउरि राखे। आयसु किए मुदित फुर भाखे ॥
म जो आयसु मो कहुँ होई। माथे मानि करौं सिख सोई ॥
त जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई ॥
मुनि राम सत्य तुम्ह भाखा। भरत-सनेह-विचारु न राखा ॥
हे तें कहौं बहोरि बहोरी। भरत-भगति-बस भइ मति मोरी ॥
रे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी[7] ॥

दो०—भरतबिनय सादर सुनिअ, करिअ विचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥२५९॥

र अनुरागु भरत पर देखी। रामहृदय आनंदु बिसेखी ॥
रतहिं धरम-धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस-बानी ॥
ोले गुर-आयसु-अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥

१ स्त्री २ विचार-किया ३ जहाज और बेड़ा ४ तालाब की सीप ५ घर
दाव ७ साक्षी (गवाही)

नाथ-सपथ पितु-चरन-दोहाई। भयेउ न भुवन भरतसम
जे गुर - पद - अंबुज - अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकै भरत कर भागू
लखि लघुबंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरतबड़ाई
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई[१]

दो०—तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रियबंधु सन, कहहु हृदय कइ बात ॥२६०॥

सुनि मुनिवचन रामरुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई[२]
लखि अपने सिर सबु छरु भारू[३]। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचा
पुलकि सरीर सभा भए ठाढ़े। नीरजनयन नेहजल बाढ़े
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा[४]। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा
मैं जानौं निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह[५] न काऊ
मो पर कृपा सनेहु बिसेखी। खेलत खुनिस[६] न कबहूँ देखी
सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू
मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही

दो०—महूँ सनेह-सकोच-बस, सनमुख कहे न बयन।
दरसन तृपित न आजु लगि, पेम-पियासे नयन ॥२६१॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा[७]। नीच बीचु जननी मिस[८] पारा
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा
मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली
फरै कि कोदव[१०] बालि सुसाली। मुकता प्रसव[११] कि संबुक*[१२] ताली
सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधिअवगाहू

१ चुपहो २ अत्यंत ३ बोझ ४ निबाह किया ५ क्रोध ६ प्रतिहिंसा ७ ला[ड़] ८ बहाना ९ हुआ १० कोदों ११ पदा हो १२ तालाब की सीप ॐ गहरा समु[द्र]

बिनु समुझें निज-अघ-परिपाकू[1]। जारिउँ जाय[2] जननि कहि काकू[3] ॥
हृदय हेरि हारेउ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा ॥
गुर गोसाइँ साहिब सियरामू। लागत मोहि नीक परिनामू ॥

दो०—साधु-सभा गुर-प्रभु-निकट कहौं सुथल सतिभाउ।
प्रेम-प्रपंच कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६२॥

भूपतिमरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगत सब साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर-नर-नारी ॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बनगवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिबेष लखन-सिय-साथा ॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ ।
बहुरि निहारि निषादसनेहू। कुलिस कठिन उर भयेउ न बेहू[4] ॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई[5] ॥
जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछीं। तजहिं बिषमबिष तामस तीछीं[6]

दो०—तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित[7] लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावै काहि ॥२६३॥

सुनि अति बिकल भरत-बर-बानी। आरति[8] प्रीति-बिनय-नय-सानी ॥
सोकमगन सब सभा खभारू[9]। मनहुँ कमलबन परेउ तुषारू ।
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरतप्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिन-कर-कुल-कैरव-बन-चंदू ।
तात जायँ जिअ करहु गलानी। ईसअधीन जीवगति जानी ॥
तीनि काल तिभुवन मत मोरें। पुन्यासिलोक[10] तात तर[11] तोरें ॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक-परलोकु नसाई ॥

१ अपने पापों का फल २ व्यर्थ जलाया ३ बुराभला (व्यङ्ग) कह कर ४ छेद ५ जड़ जीव के कारण सभी सहना पड़ा ६ तेज, भयंकर ७ बुरे ८ दुख पूर्ण ९ व्याकुल १० पुण्यात्मा (पुन्यश्लोक) ११ नीचे ।

दोसु देहि जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर-साधु सभा नहिं सेई

दो०—मिटिहहिं पाप प्रपंच[1] सब अखिल[2] अमंगल[3] भार ।
लोक-सुजसु परलोक-सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६४

कहौं सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर पेम नहिं दुरै दुराएँ
मुनिगन निकट बिहँग मृग जाहीं । बाधक बधिक[4] बिलोकि पराहीं
हित अनहित पसु पंछिउ जाना । मानुषतनु गुन-ग्यान-निधाना
तात तुम्हहिं मैं जानौं नीकें । करौं काह असमंजस जी कें
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहौं सोइ कीन्हा

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु ।
सत्य-संध-रघुबर-बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥

सुर-गन-सहित सभय[5] सुरराजू । सोचहिं चाहत होन अकाजू
बनत उपाउ करत कछु नाहीं । रामसरन सब गे मन माहीं
बहुरि बिचारि परसपर कहहीं । रघुपति भगत-भगति-बस अहहीं
सुधि करि अंबरीष, दुरबासा* । भे सुर, सुरपति निपट निरासा
सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा । नरहरि किए प्रगट प्रहलादा
लगि लगि कान[6] कहहिं धुनि माथा । अब सुर-काज भरत के हाथा

---

१ माया २ सम्पूर्ण ३ विघ्न ४ बहेलिया इत्यादि ५ स+भय=डरा हु
* यह कथा पहिले आ चुकी है ६ काना फूँसी करना ।

न उपाउ न देखिय देवा। मानत रामु सु-सेवक-सेवा॥
य सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। निज-गुन-सील रामबस करतहि॥
ो०—सुनि सुरमत सुरगुरु[1] कहेउ भल तुम्हार बड़भागु।
सकल सु-मंगल-मूल जग भरत-चरन-अनुरागु॥२६६॥
ीतापति-सेवक-सेवकाई। कामधेनु-सय-सरिस सुहाई॥
रतभगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु विधि बात बनाई॥
खु देवपति भरतप्रभाऊ। सहज-सुभाय-बिवस रघुराऊ॥
न थिर[2] करहु देव डरु नाहीं। भरतहिं जानि रामपरिछाहीं॥
ुनि सुरगुर-सुर-संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं सँकोचू॥
नज सिर भार भरतु जिय जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥
करि बिचारु मन दीन्ही ठीका[3]। रामरजायसु आपन नीका[4]॥
नेजपन[5] तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेह कीन्ह नहिं थोरा॥
दो०—कीन्ह अनुग्रह[6] अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज-जुग-हाथ[7]॥२६७॥
कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा-अंबु-निधि अंतरजामी॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मनकलपित सूला॥
अपडर डरेउँ न सोच समूले। रबिहि न दोसु देव दिसि भूले॥
ोर अभागु मातुकुटिलाई। बिधि गति बिषम कालकठिनाई॥
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला[8]। प्रनतपाल[9] पन आपन पाला॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु बेदबिदित नहिं गोई[10]॥
जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाई॥
उ देव-तरु-सरिस[11] सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ[12]॥

---

१ देवताओं का गुरु (वृहस्पति) २ (स्थिर) धीरज धरो ३ निश्चय किया ४ भलाई है ५ प्रण, पैज ६ कृपा ७ दोनों कमलरूपी हाथ ८ नष्ट किया ९ शरणागत पालक १० छिपी हुई ११ कल्प वृक्ष के सदृश १२ कभी किसी के प्रतिकूल नहीं होता।

दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि[1] सब सोच।
मॉगत अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच ॥२६८॥

लखि सब विधि-गुर-स्वामि-सनेहू। मिटेउ छोभ[2] नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभुचित[3] छोभ न होई॥
जो सेवकु साहिबहिं सँकोची। निज हित चहै तासु मति पोची[4]॥
सेवकहित साहिबसेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई[5]॥
स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि विधि नीका॥
यह स्वारथ-परमारथ-सारू। सकल-सुकृत[6] फल सुगति-सिंगारू॥
देव एक विनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मन माना॥

दो०—सानुज पठइअ मोहिं बन कीजिअ सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ॥२६९॥

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीयसहित रघुराई॥
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई॥
देव दीन्ह सब मोहि अभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू॥
कहौं बचन सब स्वारथहेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥
उतरु देइ सुनि स्वामिरजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू[7]। स्वामि-सनेह सराहत[8] साधू॥
अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभु-पद-सपथ कहौं सतिभाऊ। जग-मंगल-हित एक उपाऊ॥

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब[9] ॥२७०॥

---

१ नष्ट करने वाली है २ दुःख ३ आपके हृदय में ४ नीच ५ छोड़ कर ६ पुण्य ७ बुराइयों का अथाह समुद्र ८ सराहना करते हैं ९ अटल उलझन

भरतवचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजसवस अवधनिवासी। प्रमुदित[1] मन तापस-बनवासी॥
चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभुगति देखि सभा सब सोची॥
जनक-दूत तेहि अवसर आए। मुनि वसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥
करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे[2]॥
दूतन्ह मुनिवर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर वर[3] जोरि हाथा॥
बूझब राउर सादर साँई। कुसलहेतु सो भयेउ गोसाईं॥

दो०—नाहिं त कोसलनाथ के, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला[4] अवध बिसेष तें, जगु सब भयेउ अनाथ॥२७१॥

कोसलपति-गति[5] सुनि जनकौरा[6]। भे सब लोक सोकबस बौरा॥
जेहि देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥
रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु व्यालहि॥
भरतराज रघुबर-बन-बासू। भा मिथिलेसहि हृदय हरासू[7]॥
नृप बूझे बुध-सचिव-समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ॥
नृपहि धीर धरि हृदय बिचारी। पठए अवध चतुर चर[8] चारी॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ। आयेहु बेगि न होइ लखाऊ[9]॥

दो०—गए अवध चर भरतगति, बूझि देख करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति[10]॥२७२॥

दूतन्ह आइ भरत कै करनी। जनकसमाज जथामति बरनी॥
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति॥

---

१ प्रसन्नचित्त २ अत्यन्त दुखी हुये ३ सुन्दर-दूत ४ जनकपुरी ५ राजा दशरथ की गति ६ जनकपुरी के लोग ७ (ह्रास) दुख ८ दूत ९ किसी को ज्ञात न हो १० जनकपुरी।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई । लिए सुभट साहनी[1] बोलाई ।
घर पुर देस राखि रखवारे । हय गय रथ बहु जान[2] सँवारे ।
दुघरी[3] साधि चले ततकाला । किअ बिश्रामु न मग महिपाला ।
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा । चले जमुन उतरन सबु लागा ।
खबरि लेन हम पठए नाथा । तिन्ह कहि अस महि नायेउ माथा ।
साथ किरात छसातक दीन्हे । मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु, हरषेउ अवधसमाजु ।
रघुनंदनहिं सकोचु बड़, सोचबिबस सुरराजु ॥२७३॥

गरै गलानि[4] कुटिल कैकेई । काहि कहै केहि दूषनु देई ।
अस मन आनि मुदित नरनारी । भयेउ बहोरि रहब दिन चारी ।
एहि प्रकार गत बासर[5] सोऊ । प्रात नहान लाग सब कोऊ ।
करि मज्जन पूजहिं नरनारी । गनपति गौरि तिपुरारि[6] तमारी[7]
रमा-रमन-पद[8] बंदि बहोरी । बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ।
राजा राम जानकी रानी । आनँदअवधि अवध रजधानी ।
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा । भरतहिं रामु करहु जुवराजा ।
एहि सुखसुधा सींचि सब काहू । देव देहु जग-जीवन-लाहू ।

दो०—गुरसमाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सब कोउ ॥२७४॥

सुनि सनेहमय पुर-जन-बानी । निंदहिं जोग बिरति[9] मुनि ग्यानी
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन । रामहिं करहिं प्रनामु पुलकि तन
ऊँच नीच मध्यम नर नारी । लहहिं दरसु निज निज अनुहारी[10] ।
सावधान[11] सबही सनमानहिं । सकल सराहत कृपानिधानहिं ।

---

१ सेनापति २ सवारियां ३ द्विघटिका मुहूर्त ४ संकोच में गलती है ५ दिन बीत गया ६ तिपुर+अरि = महादेव ७ तम+अरि = सूर्य ८ लक्ष्मी के स्वामी के पद ९ वैराग्य १० अनुकूल ११ सुचित्तता से ।

गारिकाइहि तें रघुबरबानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील-सँकोच-सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥
कहत राम-गुन-गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुन्यपुंज जग थोरे। जिन्हहिं राम जानत करि मोरे॥

दो०—प्रेममगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम[1] उठेउ, रबि-कुल-कमल-दिनेसु[2]॥२७५॥

भाइ-सचिव-गुर-पुरजन साथा। आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥
राम-दरस-लालसा-उछाहू। पथश्रम[3] लेस[4] कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबरबैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥
आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माँती[5]॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥
लगे जनक मुनि जन पद-बंदन। रिषिन्ह[6] प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥
भाइन्ह सहित राम मिलि राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥

दो०—आश्रम-सागर साँतरस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुँ करुना-सरित, लिए जाहिं रघुनाथ॥२७६॥

बोरति[7] ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास-समीर तरंगा[8]। धीरज-तट-तरु-बर[9] कर भंगा॥
बिषम बिषाद तोरावति[10] धारा। भय भ्रम भँवर-अवर्त[11] अपारा॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ एक नहिं आवा॥
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक[12] हिय हारे[13]॥

---

१ ससन्देह, घबड़ा कर २ सूर्यवंशरूपी कमल के लिये सूर्य के समान ३ रास्ते से उत्पन्न हुआ श्रम ४ थोड़ा ५ प्रेम में मतवाली बुद्धि। ६ ऋषियों को ७ डुबोती जाती ८ पवन से उठी हुई लहरें ९ किनारे पर के सुन्दर वृक्ष १० तीक्ष्ण ११ भँवर १२ राहगीर १३ हृदय में हार गये।

*आश्रम-उदधि[1] मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥
सोक विकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप-रूप-गुन-सील सराहीं। रोवहिं सोकसिंधु अवगाहीं[2]॥

छंद०—अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम विधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगि-जन मुनि देखि दसा विदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

सो०—किए अमित[3] उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिवरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ वसिष्ठ विदेहसन॥२७७॥

जासु ग्यानुरवि भवनिसि[4] नासा। वचन किरन-मुनि-कमल-बिकासा
तेहि कि मोह ममता निअराई[5]। यह सिय-राम-सनेह बड़ाई॥
विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद बखाने॥
राम-सनेह-सरस[6] मन जासू। साधुसभा बड़ आदर तासू॥
सोह न राम पेम बिनु ग्यानू। करनधार[7] बिनु जिमि जल-जानू[8]॥
मुनि बहु बिधि विदेह समुझाए। रामघाट सब लोग नहाए॥
सकल-सोक-संकुल नरनारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कवन विचारू

दो०—दोउ समाज निमिराज, रघुराज नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृसगात[9]॥२७८॥

---

१ जलधि समुद्र २ डूब रहे है, ३ बहुत ४ ससार रूपी रात्रि * आश्रमरूप समुद्र जो शांतरस रूपी जल से भरा हुआ था, सेनारूप नदी के मिलने से अशात होगया अर्थात शोर हो गया ५ पास जा सकती है ६ राम के स्नेह-जल से भरा ७ हुआ मल्लाह ८ नाव, जहाज ९ दुबले।

महिसुर दसरथ-पुर-वासी । जे मिथिला-पति-नगर-निवासी ॥
स बंस-गुर जनक पुरोधा[1] । जिन्ह जगु मगु परमारथु सोधा ॥
गे कहन उपदेस अनेका । सहित धरम नय बिरति बिवेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी ॥
ब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ । नाथ कालि जल-बिनु सब रहेऊ ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई । गयेउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥
रिषि-रुख लखि कह तिरहुतिराजू । इहाँ उचित नहिं असन अनाजू[2] ॥
कहा भूप भलि सबहि सुहाना । पाइ रजायसु चले नहाना ॥

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार ।
लै आए बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार ॥२७९॥

कामद[3] भे गिरि रामप्रसादा । अवलोकत अपहरत[4] बिषादा ॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा । जनु उमगत आनँद अनुरागा ॥
बेलि बिटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि[5] अनुकूला[6] ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू । त्रिबिध समीर[7] सुखद सब काहू ॥
जाइ न बरनि मनोहरताई । जनु महि करति जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई । राम जनक मुनि-आयसु पाई ॥
देखि देखि तरुबर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना । पावन[8] सुंदर सुधासमाना ॥

दो०—सादर सब कहँ रामगुरु पठए भरि भरि भार ।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फलहार[9] ॥२८०॥

एहि बिधि बासर बीते चारी । रामु निरखि नरनारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं । बिनु सियराम फिरब भल नाहीं ॥
सीताराम संग बनबासू । कोटि अमर-पुर-सरिस सुपासू ॥

---

१ जनक के पुरोहित २ अन्न का भोजन ३ इच्छा पूर्ण करने वाला ४ दूर कर देता है ५ भौंरा ६ सुहावने ७ हवा ८ पवित्र ९ फल खाने लगे ।

परिहरि लषन-राम-बैदेही । जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही ॥
दाहिन दइउ होइ जब सबहीं । रामसमीप बसिअ बन तबहीं ॥
मंदाकिनिमज्जनु तिहुँ काला । रामदरसु मुद-मंगल-माला ॥
अटनु[1] राम गिरि बन तापस थल[2]। असनु अमियसम कंद मूल फल ॥
सुखसमेत संवत[3] दुइ-साता[4]। पलसम होहिं न जनिअहिं जाता ॥

दो०—एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु ।
सहज सुभाय समाज दुहुँ, राम-चरन अनुरागु ॥ २८१ ॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
सीयमातु तेहि समय पठाईं । दासी देखि सुअवसरु आईं ॥
सावकास सुनि सब सिय सासू । आयेउ जनक-राज-रनिवासू ॥
कौसल्या सादर सनमानी । आसन दिए समय सम आनी ॥
सीलु सनेह सकल दुहुँ ओरा । द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा[5]॥
पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥
सब सिय-राम-प्रीति किसि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति[6]॥
सीयमातु कह बिधि बुधि बाँकी[7] । जो पयफेनु[8] फोर पबि-टाँकी[9]॥

दो०—सुनिअ सुधा देखिअहि गरल, सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक[10] बक, मानस सकृत[11] मराल॥२८२॥

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा । बिधिगति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ॥
जो सृजि पालै हरै बहोरी । बाल-केलि-सम[12] बिधिमति भोरी ॥
कौसल्या कह दोसु न काहू । करमबिबस दुख सुख छति लाहू[13]॥
कठिन करमगति जान बिधाता । जो सुभ असुभ सकल फलदाता ॥
ईस-रजाइ सीस सबही के । उतपति थिति[14] लय[15] बिषहु अमी के ॥

---

१ घूमना २ तपस्वियों के स्थानों पर ३ वर्ष ४ चौदह ५ कठोर वज्र ६ रंजीदा ७ अजीब ८ दूध के झाग ९ वज्र की टांकी से १० उल्लू ११ अकेले एक १२ बालकों के खेल के सदृश १३ लाभ हानि १४ (स्थिति) १५ नाश ।

देवि मोहबस सोचिअ बादी। बिधिप्रपंच अस अचल-अनादी[1]॥
भूपति जियब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज-हित-हानी॥
सीयमातु कह सत्य सुबानी। सुकृतीअवधि अवधि पति-रानी॥

दो०—लषनु रामु सिय जाहु बन, भल परिनाम न पोचु।
गहबरि[2] हिय कह कौसिला, मोहि भरत कर सोचु॥२८३॥

ईसप्रसाद असीस तुम्हारी। सुत-सुतबधू देव-सरि-बारी॥
रामसपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहौं सखी सतिभाऊ॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप[3] भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे[4]। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥
जानौं सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसे कनक मनि पारिखि पाए। पुरुष परिखिअहि समय सुभाए॥
अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेह सयानप[5] थोरा॥
सुनि सुरसरि-सम पावनि बानी। भईं सनेह-बिकल सब रानी॥

दो०—कौसल्या कह धीर धरि, सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेक-निधि-बल्लभहि[6], तुम्हहिं सकै उपदेसि॥२८४॥

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥
रखिअहिं लषन भरत गवनहिं बन। जौं यह मत मानै महीपमन॥
तौ भल जतन करब सुबिचारी। मोरे सोच भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइँ मगन करुनरस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि॥
सबु रनिवासु बिथकि[7] लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ॥

---

१ अ+चल (स्थिर) अन्+आदि = जिसका आरम्भ न हो २ गद्गद हृदय से ३ भातृस्नेह ४ हिच किचाती है ५ चतुराई ६ विवेक की निधि; जनक; उनकी प्रियतमा ७ शिथिल, चेतनारहित।

देवि दंडजुग जामिनि बीती। राममातु सुनि उठी सप्रीती॥

दो०—बेगि पाउ धारिअ थलहिं, कह सनेह सतिभाय।
हमरे तौ अब ईसगति, कै मिथिलेस सहाय॥२८५॥

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गहि पाय पुनीता॥
देवि उचित असि बिनय तुम्हारी। दशरथ-घरनि[1] राम-महतारी॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूमगिरि सिर तिनु धरहीं॥
सेवक राउ करम-मन-बानी। सदा सहाय महेस भवानी॥
रउरे[2] अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर[3] सोहै॥
रामु जाइ बन करि सुरकाजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम-बाहु-बल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देवि न होइ मुधा[4] मुनि भाखा॥

दो०—अस कहि पग परि पेम अति, सियहित बिनय सुनाइ।
सियसमेत सियमातु तब, चली सुआयसु पाइ॥२८६॥

प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥
तापसबेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेखी॥
जनक राम-गुरु-आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन पेम प्रान की॥
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूपमनु मनहुँ पयागू॥
सियसनेह बटु[5] बाढ़त जोहा। तापर राम-पेम-सिसु सोहा*॥

---

१ दशरथ की रानी २ आपके ३ दिन+कर सूर्य्य ४ असत्य ५ वृक्ष

* जब महाप्रलय होती है तो समुद्र उमड़ कर सब जगह जल ही जल कर देते है—पृथ्वी उसमें डूब जाती है—प्रयाग का अक्षैवट बढ़कर नहीं डूबता। उस वट के पत्ते पर ईश्वर बालरूप धर के रहता है--जनक के हृदय पर यही उपमा घटाई है। अर्थात् अनुराग समुद्र उमड़ा, राजा का मन प्रयाग, उसमें सीता का स्नेह वट और राम-प्रेम बालमुकन्द हुआ।

रजीवी-मुनि[1] ग्यान विकल जनु। बूड़त लहेउ बालअवलंबनु[2] ॥
ह मगन मति नाहिं बिदेह की। महिमा[3] सिय रघुबर-सनेह की॥
दो०—सिय पितु-मातु-सनेह-बस, बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुता धीरजु धरेउ, समउ सुधरमु बिचारि ॥२८७॥
तपसबेष जनक सिय देखी। भयेउ पेमु परितोषु बिसेषी ॥
त्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल[4] जगु कह सब कोऊ॥
जति सुरसरि कीरतिसरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंडकरोरी ॥
ंग अवनिथल तीन बड़ेरे*। एहि किए साधु समाज घनेरे॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥
कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं ॥
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ। हृदय सराहत सीलु सुभाऊ ॥
दो०—बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरतगति, रानि सुबानि सयानि ॥२८८॥
सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससिसारू ॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन ॥
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरतकथा-भव-बंध[5]-बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥
सो मति मोर भरत महिमाहीं। कहै काह छलि छुअत न छाहीं ॥

* एक समय मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान् से वर्दान माँगा कि मुझे अपनी माया दिखा दो। तप करते समय ऋषि देखते हैं कि संसार पानी में डूबता जाता है और थोड़ी देर में जल के सिवाय कुछ दिखाई ही नहीं देता था। उसी में बहते हुए ऋषि ने अक्षय वट पर बालमुकुन्द का आश्रय पाया थोड़ी देर में माया दूर हुई।

१ मार्कंडेय २ बालमुकुंद का सहारा ३ प्रभुता ४ स्वेत उज्वल ५ संसार के बन्धन (आवागवन इत्यादि) * गंगापर हरद्वार, प्रयाग और समुद्रसंगम तीन बड़े स्थान हैं।

सोक* कनकलोचन[1] मतिछोनी[2] । हरी विमल गुन-गन जग जोनी ॥
भरतविवेक बराह विसाला । अनायास उधरी तेहि काला ।
करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे । राम राउ गुरु साधु निहोरे ॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा । कहौं वदन मृदु बचन कठोरा ॥
हिय सुमिरी सारदा सुहाई । मानस तें मुखपंकज आई ॥
विमल-विवेक-धरम-नय- साली । भरत भारती[3] मंजु मराली ।

दो०—निरखि विवेक विलोचनन्हि, सिथिल-सनेह समाजु ।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु ॥२६८॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी । पूज्य परमहित अंतरजामी ।
सरल सुसाहिबु सील-निधानू । प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू ॥
समरथ सरनागत हितकारी । गुनगाहकु अवगुन अघ-हारी ॥
स्वामि गोसाइंहि सरिस गोसाईं । मोहि समान मैं साँइ दोहाईं ।
प्रभु-पितु-बचन मोहबस पेली[4] । आयेउँ इहाँ समाज सकेली ।
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअ अमरपद, माहुर मीचू ।
रामरजाइ मेट मन माहीं । देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं
सो मैं सब विधि कीन्हि ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ।

दो०—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर ।
दूषन भे भूषनसरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२६९॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई । जगत विदित निगमागम गाई ।
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी । नीच निसील[5] निरीस[6] निसंकी[7]

१ (कनक+लोचन) हिरण्याक्ष २ धरती ३ वाणी ४ उल्लंघन ५ अना॰ ६ निडर ७ शील रहित ।

* सृष्टि के आदि में हिरण्याक्ष दैत्य ने बल के घमंड में अपने साथ लड़ने वाला खोजते २ पृथ्वी को पाताल में रख दिया । इधर ब्रह्मा ने निराधार सृष्टि देख कर विष्णु भगवान् से प्रार्थना की । विष्णु वाराह रूप धर कर गये और उसे मार कर पृथ्वी को लौटा लाये ।

भरत-प्रीति-नति विनय-बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
आसु बिलोकि भगति लवलेसू[1]। प्रेममगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि[2] मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मतिगति बाल-बचन की नाईं॥

दो०—भरत-बिमल-जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर-कुमारि।
उदित बिमल जनहृदय नभ, एकटक रही निहारि॥३०४॥

भरत-सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघुमति चापलता[3] कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय-राम पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥
देखि दयालु दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की॥
धरमधुरीन धीर नयनागर। सत्य-सनेह-सील-सुख-सागर॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति-प्रीति-पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि सरबसु से*। हित परिनाम सुनत ससिरसु[4] से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक-बेद - बिद[5] परमप्रबीना॥

दो०—करम बचन मानस[1] बिमल, तुम समान तुम्ह तात।
गुरुसमाज लघु-बंधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात॥३०५॥

जानहु तात तरनि-कुल-रीती। सत्यसंध पितु - कीरति प्रीती॥
उदासीन हित अनहित[2] मन की॥
मोर परम-हित धरमू॥
कहौं अवसर अनुसारा॥
कृपा सँभारी॥

५ शास्त्र और
समान अर्थात्

प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी । बैठाए समीप गहि पानी ॥
भरतबिनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥

छंद—रघुराउ सिथिल सनेहु साधु समाज मुनि मिथिलाधनी।
मन महँ सराहत भरत-भायप भगति की महिमा घनी ॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस-मलिन[1] से ।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम-नलिन[2] से ॥

सो०—देखि दुखारी दीन दुहुँ समाज नरनारि सब ।
मघवा महामलीन मुए मारि मंगल चहत ॥२०२॥

कपट-कुचालि-सीवँ सुरराजू । पर-अकाज-प्रिय आपन काजू ॥
काकसमान पाक-रिपु-रीती[3] । छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥
प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला । सो उचाटु सबके सिर मेला ॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे[4] । रामप्रेम अतिसय न बिछोहे[5] ॥
भए उचाटबस मन थिर नाहीं । छन बन रुचि, छन सदन सुहाहीं ॥
दुबिध[6] मनोगति प्रजा दुखारी । सरित-सिंधु-संगम जनु बारी ॥
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं । एक एक सन मरमु न कहहीं ॥
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवान जुबानू ॥

दो०—भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ ।
लागि देवमाया सबहिं, जथाजोगु जनु पाइ ॥२०३॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे । निजसनेह सुर-पति-छल भारे ॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री । भरतभगति सब कै मति जंत्री ॥
रामहिं चितवत चित्र लिखे से । सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥

---

१ कपटी मन से २ रात्रि आने पर कमल से ३ पाक राक्षस का बैरी इन्द्र ४ मोहित किया ५ दूर हुए दुचित्त, ६ दुविधा ।

नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सबु होत खुआरू[1] ॥
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू[2] । जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥

दो०—राजकाज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम ।
गुरप्रभाउ पालिहि सबहिं, भल होइहि परिनाम ॥२०६॥

सहित समाज तुम्हार हमारा । घर बन गुरप्रसाद रखवारा ॥
मातु-पिता-गुरु-स्वामि निदेसू। सकलधरम धरनीधरु सेसू ॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू । तात तरनि-कुल-पालक होहू ॥
साधक एक सकल सिधि देनी । कीरति सुगति भूतिमय-बेनी[3] ॥
सो बिचारि सहि संकट भारी । करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥
बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई । तुमहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥
जानि तुम्हहिं मृदु कहउँ कठोरा । कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥
होहिं कुठाँय[4] सुबंधु सहाये । ओड़ियहि[5] हाथ असनिहु[6] के घाये[10] ॥

दो०—सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ ॥२०७॥

सभा सकल सुनि रघुबर बानी । प्रेम-पयोधि अमिअ[7] जनु सानी ॥
सिथिल समाजु सनेह समाधी । देखि दसा चुप सारद साधी ॥
भरतहिं भयेउ परम संतोषू । सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू ॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू । भा' जनु गूँगेहि गिरा-प्रसादू[8] ॥
कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी । बोले पानिपंकरुह[9] जोरी ॥
नाथ भयेउ सुखु साथ गये को । लहेउँ लाहु जग जनमु भये को ॥
अब कृपाल जस आयसु होई । करौं सीस धरि सादर सोई ॥

---

१ नष्टी पलीत २ सूर्य छिप गया ३ ऐश्वर्यरूपी त्रिवेणी ४ कुसमय पर ५ आगे बढ़ते हैं (बचाने को कोशिश करते हैं.) ६ बज्र ७ प्रेमरूपी अमृत के समुद्र में ८ सरस्वती की कृपा होगई, बोलने लगा ९ कमलरूपी हाथ १० बज्र के घाव ।

सो अवलंब देउ मोहिं देई । अवधि-पारु पावौं जेहि सेई[1] ॥
दो०—देव देवअभिषेक हित, गुर अनुसासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथसलिलु तेहि कहँ काह रजाइ ॥
एकु मनोरथ बड़ मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभुआयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई ॥
चित्रकूट सुचि थल तीरथ वन। खग मृग सरि सर निर्झर[2] गिरिगन ॥
प्रभु पद-अंकित[3] अवनि विसेखी। आयसु होइ त आवौं देखी ॥
अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू[4] ॥
मुनिप्रसादु वन मंगलदाता । पावन परम सुहावन भ्राता ॥
रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं । राखेहु तीरथजलु थल तेहीं ॥
सुनि प्रभु-वचन भरत सुख पावा। मुनि-पद-कमल मुदित सिरु नावा ॥
दो०—भरत राम-संबाद सुनि, सकल-सुमंगल-मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुर-तरु-फूल ॥ ३०९ ॥
धन्य भरत जय राम गोसाईं । कहत देव हरषत बरिआईं ॥
मुनि मिथिलेस सभा सब काहू। भरत-बचन सुनि भयेउ उछाहू ॥
भरत-राम-गुन-ग्राम[5] सनेहू । पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन ॥
मतिअनुसार सराहन लागे । सचिव सभासद सब अनुरागे ॥
सुनि सुनि राम-भरत-संवादू। दुहुँ समाज हिय हरषु बिषादू ॥
राममातु दुखु-सुखु-सम आनी। कहि गुन राम प्रबोधीं रानी ॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई । एक सराहत भरतभलाई ॥
दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैलसमीप सुकूप।
राखिअ तीरथतोय तहँ, पावन अमिअ अनूप ॥ ३१० ॥
भरत अत्रिअनुसासन पाई । जलभाजन सब दिए चलाई[6] ।

१ सेवा करके २ झरना ३ आपके चरण-चिह्न जिस पर हैं ४ विचरो
५ गुण-समूह ६ भेज दिया ।

सानुज आपु अत्रि मुनि साधू । सहित गए जहँ कूप अगाधू ॥
पावन पाथ पुन्य-थल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि-सिद्ध[1] थल एहू । लोपेउ काल विदित नहिं केहू[2] ॥
तब सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ॥
बिधिबस भयेउ बिस्व उपकारू । सुगम अगम अति धरम-बिचारू ॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ जलजोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी । होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥

दो०—कहत कूप-महिमा सकल, गए जहाँ रघुराउ ।
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं, तीरथ-पुन्य-प्रभाउ ॥२११॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती । भयेउ भोर निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरतु दोउ भाई । राम-अत्रि-गुर-आयसु पाई ॥
सहित समाज साज सब सादे । चले राम बन-अटन[3] पयादे ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं । भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥
कुस कंटक काँकरी कुराई[4] । कटुक[5] कठोर कुबस्तु दुराई ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे । बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे ॥
सुमन बरषि सुर घन करि छाँहीं । बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं[6] ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी । सेवहिं सकल रामप्रिय जानी ॥

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु,[7] राम कहत जमुहात ।
राम-प्रान-प्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बड़ि बात ॥२१२॥

एहि बिधि भरतु फिरत बन माँहीं । नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा । खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥
चारु बिचित्र पबित्र बिसेखी । बूझत भरतु दिव्य सब देखी ॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ । हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥

१ अन+आदि (जिसके आदि का पता नहीं) सिद्ध २ किसी को ३ वन में घूमना ४ ठूंठ ५ कड़वी ६ नर्म होने को ७ साधारण ।

तहुँ निमज्जन[1], कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा[2] ॥
तहुँ बैठि मुनिआयेसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई ॥
खि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बन-देवा ॥
फिरहिं गए दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु-पद कमल बिलोकहिं आई ॥

दो०—देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयेउ दिवसु भइ साँझ॥३१३॥

ोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति-राजू ॥
ल दिन आजु जान मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं ॥
ुर-नृप-भरत सभा अवलोकी[3]। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
ील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥
रत सुजान रामरुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी ॥
रि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥
ोहि लगि सबहि सहेउ संतापू[4]। बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥
ब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भरि जाई ॥

दो०—जेहि उपाय पुनि पायँ जनु, देखै दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल ॥३१४॥

रजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाई[6]॥
ाउर बदि[5] भल भव दुख-दाहू। प्रभु बिनु बादि परम-पद-लाहू ॥
वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
नतपालु पालहिं सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥
स मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किए बिचारु न सोच खरो सो[7]॥
ारति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह-ढीठ-हठि-मोहू[7] ॥
ह बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी॥

१ स्नान करते हैं २ सुन्दर ३ देखी ४ दुःख ५ आपका कहा कर ६ सच्चा,
दासा ७ मुझको बरबस ढीठ बना दिया (हठि का पाठान्तर अति)

भरतबिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर-नीर-बिबरन-गति[1] हंसी॥

दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के, बचन दीन छलहीन।
देस-काल-अवसरु-सरिस, बोले रामु प्रबीन॥३१५॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहिं नृपहिं घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू॥
मोर तुम्हार परमपुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितुआयसु पालिअ दुहुँ भाई। लोक बेद भल[2] भूप भलाई॥
गुर-पितु-मातु-स्वामि-सिख पाले। चलेहु कुमग पग परहिं न खाले॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥
देसु कोसु पुरजन परिवारू। गुरपद-रजहिं लाग छरु भारू[3]॥
तुम्ह मुनि मातु-सचिव-सिख मानी। पालेहु पुहुमि[4] प्रजा रजधानी॥

दो०—मुखिआ मुखु सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
पालै पोषै सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥३१६॥

राज-धरम-सरबसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई॥
बंधुप्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥
भरत-सीलु गुर-सचिव-समाजू। सकुच सनेह-बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी[5] दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
चरनपीठ[6] करुना निधान के। जनु जुग जामिक[7] प्रजा प्रान के॥
संपुट[8] भरत सनेह—रतन के। आखर जुग जनु जीवजतन[8] के॥
कुलकपाट कर कुसल[9] करम के। बिमल-नयन[10] सेवा-सु धरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय-राम रहे तें॥

दो०—माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे[11] अमर पति, कुटिल कुअवसर पाइ॥३१७॥

---

१ दूध पानी के अलग करने की गति २ पाठान्तर—दुइ ३ बड़ा बोझ ४ धरती ५ खड़ाऊँ ६ पादुका ७ दृढ़न ८ रक्षार्थ ९ उत्तम १० उज्ज्वल नेत्र ११ उकताये।

कुचालि सब कहँ भइ नीकी । अवधि आस सम जीवन जी की ॥
लषन-सिय राम वियोगा । हहरि भरत सब लोग कुरोगा ॥
कृपा अवरेव[1] सुधारी[2] । बिबुधधारि[3] भइ गुनद* गोहारी[4] ॥
त भुज भरि भाइ भरत सो । राम-प्रेम-रसु कहि न परत सो ॥
मन बचन उमग अनुरागा । धीर-धुरंधर धीरज त्यागा ॥
जलोचन मोचत[5] बारा । देखि दसा सुरसभा दुखारी ॥
गन गुर धुर धीर जनक से । ग्यानअनल मन कसे कनक[6] से ॥
बिरंचि निरलेप[7] उपाये । पदुमपत्र[8] जिमि जग जलजाये ॥

०—तेउ बिलोकि रघुबर-भरत-प्रीति अनूप अपार ।
भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार ॥३१८॥

ँ जनक-गुर-गति-मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
नत रघुबर-भरत-बियोगू । सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू ॥
सकोच रस अकथ सुबानी । समउ सनेह सुमिरि सकुचानी ॥
ट भरतु रघुबर समुझाए । पुनि रिपुदवन हरषि हिय लाए ॥
क सचिव-भरत-रुख पाई । निज निज काज लगे सब जाई ॥
दारुन दुखु दुहूँ समाजा । लगे चलन के साजन साजा ॥
-पद-पदुम बंदि दोउ भाई । चले सीस धरि रामरजाई ॥
तापस बन देव निहोरी । सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥

—लषनहिं भेंटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय-पद-धूरि ।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल-सुमंगल-मूरि ॥३१९॥

ज राम नृपहिं सिर नाई । कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई ॥
दयाबस बड़ दुख पायेउ । सहित समाज काननहिं आयेउ ॥

---

१ बिगड़ी हुई २ सुधर जाती है ३ देवताओं की धारणा (इच्छा) ४ गुहार, रक्षार्थ से बुलाना ५ छोड़ना ६ सोना ७ माया से रहित ८ कमल के पत्ते * गुणद ।

पुर पसु धारिश्र देइ असीसा । कीन्ह धीर धरि गवनु
मुनि महिदेव साधु सनमाने । बिदा किए हरि-हर-सम जाने
सासुसमीप गए दोउ भाई । फिरे बंदि पग आसिष पाई
कौसिक बामदेव जाबाली । परिजन पुरजन सचिव सुचाली
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा । बिदा किए सब सानुज रामा
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे । सब सनमानि कृपानिधि

दो०—भरत-मातु-पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि ।
बिदा कीन्हि साजि पालकी, सकुच सोच सब मेंटि ॥२१

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता । फिरी प्रान-प्रिय-प्रेम-पुनीता
करि प्रनामु भेंटी सब सासू । प्रीति कहत कबि हिय न हुलासू
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई । रही सीय दुहुँ प्रीति समाई
रघुपति पटु पालकी मँगाई । करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई । सम सनेह जननी पहुँचाई
साजि बाजि गज बाहन नाना । भूप-भरतदल कीन्ह पयाना
हृदय राम सिय लखन समेता । चले जाहिं सब लोग अचेता
बसह[१] बाजि गज पसु हिय हारे । चले जाहिं परबस मन मारे

दो०—गुर-गुरतिय-पद बंदि प्रभु, सीता लषन समेत ।
फिरे हरष-बिसमय-सहित, आए परननिकेत ॥ ३२१ ॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू । चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू
कोल किरात भिल्ल बनचारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी
प्रभु सिय लषन बैठि बट छाहीं । प्रिय परिजन-बियोग बिलखाहीं
भरत-सनेह-सुभाउ सुबानी । प्रिया अनुज सन कहत बखानी
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी । श्रीमुख[४] राम प्रेमबस बरनी
तेहि अवसर खग मृग जल मीना । चित्रकूट चर अचर मलीना

१ वृष २ अ+चेत (चैतन्यता) वेहोश ३ बैल ४ स्वयं ।

ध विलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥
प्रनामु करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरो सो ॥

०—सानुज सीयसमेत प्रभु, राजत परनकुटीर ।
भगति ग्यान वैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२२॥

र महिसुर गुर भरत भुआलू। रामबिरह सबु साजु बिहालू[१] ॥
-गुन-ग्राम गुनत मन माहीं । सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥
ना उतरि पार सबु भयेऊ । सो बासरु बिनु भोजन गयेऊ ॥
रि देवसरि दूसर बासू। रामसखा सब कीन्ह सुपासू[२] ॥
उतरि गोमती नहाए। चौथे दिवस अवधपुर आए ॥
क रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी ॥
पि सचिव गुर भरतहि राजू। तिरहुति चले साजि सब साजू ॥
र-नारि-नर गुर-सिख मानी। बसे सुखेन राम-रजधानी ॥

०—रामदरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास ।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥३२३॥

व सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥
सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातुसेवकाई ॥
र बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बरबिनय निहोरे ॥
नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब सँकोचू ॥
जन पुरजन प्रजा बुलाए। समाधानु करि सुबस[३] बसाए ॥
ज गे गुरगेह बहोरी । करि दंडवत कहत कर जोरी ॥
सु होइ त रहउँ सनेमा[४] । बोले मुनि तन पुलकि[५] सपेमा॥
भव कहब करब तुम्ह जोई। धरमसारु[६] जग होइहि सोई ॥

---

१ घबड़ाये हुये २ आराम ३ अच्छी तरह से ४ नियम और व्रत के साथ
रोमांचित होकर ६ धर्म का तत्व ।

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक[1] बोलि दिनु साधि
सिंघासन प्रभुपादुका बैठारे निरुपाधि[2] ॥३२४॥

राममातु गुरपद सिरु नाई । प्रभु-पद-पीठ-रजायसु पा
नंदिगाँव[3] करि परनकुटीरा । कीन्ह निवास धरम-धुर-धीर
जटाजूट सिर मुनिपट धारी । महि खनि कुससाथरी सवाँर
असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषिधरम सप्रे
भूषन बसन भोग सुख भूरी । मन तन बचन तजे तिनु तूर
अवधराजु सुरराजु सिहाई । दसरथ-धन सुनि धनदु[4] लजा
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा[5] । चंचरीक[6] जिमि चंपक[7] बाग
रमाबिलासु[8] रामअनुरागी । तजत बमन[9] जिमि जन बड़ भाग

दो०—राम-पेम-भाजन भरत बड़े न येहि करतूति ।
चातक हंस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति ॥३२५॥

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई । घटै तेजु बल मुखछबि सो
नित नव राम-पेम पनु पीना[10] । बढ़त धरमदलु मन न मला
जिमि जल निघटत सरद प्रकासे । बिलसत बेतस[11] बनज[12] बिकासे
सम दम संजम नियम उपासा । नखत भरत हिय बिमल अका
ध्रुव[13] बिस्वासु अवधि राका सी[14] । स्वामिसुरति सुरबीथि[15] बिक
राम-पेम-बिधु अचल अदोखा । सहित समाज सोह नित चो
भरत-रहनि-समुझनि-करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभू
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । सेस-गनेस-गिरा-गमु ना

१ ज्योतिषी २ निर्विघ्न ३ अयोध्या के निकट कोई स्थान था ४
५ भोग बिलास ६ भौंरे ७ चम्पा ८ लक्ष्मी सम्बन्धी भोग विलास ९ कै
१० बढ़ना ११ बेत बढ़ते हैं १२ कमल खिलते हैं १३ एक तारा है १४ पूर्णि
१५ आकाश गंगा ।

दो०—नित पूजत प्रभुपावँरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति ॥३२६॥

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू ॥
लषन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
उ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन-जोगू ॥
नि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥
म पुनीत[1] भरतआचरनू[2]। मधुर मंजु मुद-मंगल-करनू ॥
रन कठिन कलि-कलुष-कलेसू[3]। महा-मोह-निसि-दलन दिनेसू[4] ॥
प—पुंज—कुंजर—मृग-राजू। समन सकल—संताप—समाजू ॥
गरंजन[5] भंजन भवभारू[6]। रामसनेह [illegible] सुधारकसारू ॥

द—सिय-राम-पेम-पियूष-पूरन[7] होत जनम न भरत को।
मुनि-मन-अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को ॥
दुखदाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि रामसनमुख करत को ॥

सो०—भरतचरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय-राम-पद पेम, अवसि होइ भव-रस-बिरति ॥ ३२७ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलविज्ञानवैराग्य सम्पादनो नाम
द्वितीयः सोपानः समाप्तः।

---

१ अत्यन्त पवित्र २ भरत के आचरण ३ कलियुग के पापों और क्लेशों ४ सूर्य ५ भक्तों को प्रसन्न करने वाला ६ संसार की कठिनाइयों के नाशक ७ राम के प्रेमरूपी अमृत से भरा हुआ।



गूढ़ार्थ कोश।



४ अवस्था–१ जाग्रत, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति, ४ तुरीय।
अष्टसिद्धि–१ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गरिमा, प्राप्ति, ५ प्राकाम्य, ६ ईशत्व, ७ वशित्व।

४ आकार–१ जरायुज, २ अंडज, ३ स्वेदज, ४ उद्भिज्ज।
१२ आभरण–१ नूपुर, २ चूड़ी, ३ हार, ४ कंकण ५ अँगूठी, ६ बाजूबंद, ७ बेसर, ८ बिरिया, ९ टीका, १० शीशफूल, ११ तागड़ी, १२ कंठश्री।

४ आश्रम–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ, और सन्यास।
४ उपवेद–१ ऋग्वेदका आयुर्वेद, २ यजुर्वेदका धनुर्वेद ३ सामवेद का गांधर्व, ४ अथर्वण वेद का स्थापत्य।
६ ऋतु–१ शिशिर, २ बसन्त, ३ ग्रीष्म, ४ वर्षा, ५ शरद, ६ हेमन्त

कल्प–चार युगों की १ चौकड़ी और हजार चौकड़ी का एक कल्प।
३ गुण–रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण।
चतुरंगिणी सेना–१ हाथी, २ रथ ३ पैदल, ४ घोड़ा।
नीति–१ साम, २ दाम, ३ दंड, ४ भेद।
युग–सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग।
वर्ग–१ धर्म, २ अर्थ, ३ काम, ४ मोक्ष।
रिपु–१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह।
वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।
ताप–आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक।
देव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

त्रिविध कर्म–संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण ।
त्रिविध श्रोता–मुक्त, मुमुक्षु, विषयी ।
त्रिविध समीर–शीतल, मन्द, सुगन्ध ।
३ अवस्था–बालक, युवा, वृद्ध ।
३ ईषणा–१ लोकबड़ाई, २ धनराज्यादि, ३ स्त्रीपुत्र ।
८ दिक्पाल–पूर्व से आदि लेकर इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, राक्षस, वायु, शिव ।
७ द्वीप–जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, पुष्कर, शाल्मली, गोमेद ।
ब्राह्मण के नवगुण–१ धृति, २ क्षमा, ३ दम, ४ अस्तेय, ५ शौच, ६ इन्द्रियनिग्रह, ७ ज्ञान, ८ विद्या, ९ सत्य ।
नवखण्ड–इलावृत्ति, रम्यक, हिरण्य, कुरु, हरि, भरत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष ।
नवनिधि–१ महापद्म, २ पद्म, ३ शंख, ४ मकर, ५ कच्छप, ६ मुकुन्द, कुन्द, ८ नील, ९ खर्व ।
पंचतत्व- पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश ।
पंचपवन–प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान ।
पंचमहायज्ञ–वेदपाठ, तर्पण, होम, बलिवैश्वदेव, अतिथिसत्कार
१८ पुराण–ब्रह्मपुराण, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्मांड ।
भक्त- आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञान, निवाल ।
भक्ति ९ प्रकार की है–श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्यभाव, और आत्मनिवेदन ।
मद–जातिमद, कुलमद, युवावस्थामद, रूपमद, विद्यामद ज्ञानमद, ध्यानमद, धनमद, राज्यमद ।

योनि-चौरासी लक्ष, इन में से ९ लक्ष जलचर, २७ लक्ष स्थावर, ११ लक्ष कृमि, १० लक्ष पक्षी, २३ लक्ष चतुष्पद, ४ लक्ष मनुष्य।

३ राम-परशुराम, राम, बलराम,।

१४ लोक-तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल,, रसातल, पाताल, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपःलोक, सत्यलोक।

१४ विद्या १ ब्रह्मज्ञान, २ रसायन, ३ श्रौतकथा, ४ वैद्यक, ५ ज्योतिष, ६ व्याकरण, ७ धनुर्विद्या, ८ जल में तैरना, ९ सांगीत, १० नाटक, ११ अश्वारोहण, १२ कोकशास्त्र, १३ चोरी, १४ चतुरता,।

४ वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्वण।

६ वेदाङ्ग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष।

६ शास्त्र-सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक,

१६ शृंगार-१ अंगशुचि, २ मंजन, ३ दिव्यवस्त्र, ४ महावर, ५ केश संभारना, ६ मांग में सिन्दूर, ७ ठोढ़ी पर तिल, ८ मांथे में बिन्दी, ९ मेंहदी १० अरगजा लगाना ११ भूषण, १२ सुगन्ध, १३ मुखराग, १४ दन्तराग, १५ अधर-राग, १६ काजल।

६ रस-कटु, तीखा, अम्ल, मधुर, कषाय, लवण,

सप्तऋषि-वशिष्ट अत्रि; कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, गौतम।

सप्तावरण १ जल, २ पवन, ३ अग्नि; ४ आकाश, ५ अहंकार, ६ महत्तत्त्व, ७ प्रकृति।

रचना—प्रबोध ।

शिक्षकों के लिये

रचना (Composition) अर्थात् वाक्य-रचना तथा निबन्ध लेखनादि—

पढ़ाने के लिये सिर्फ़ यही एक पुस्तक युक्त प्रदेशीय टैक्स्ट-बुक कमैटी ने चिट्ठी नं० जी० $\frac{१२६५}{३८१५}$ ता० १६-७-१८ के अनुसार मंजूर की है।

और हिन्दी–साहित्य-सम्मेलन, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, पंजाब की

टैक्स्टबुक कमेटियों से भी स्वीकृत है।

इसी से जान सकते हैं पुस्तक कितनी उपादेय है।

प्रबोध के पहिले अध्याय में—शब्दभेद, शब्दार्थ, अर्थ वैषम्य, अर्थभिन्नता, शब्द प्रयोगों का वर्णन है।

दूसरे में—वाक्य-**आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति**-वाक्यांश वाक्य खंड, वाक्य भेद-**सरल, जटिल, यौगिक**-वाक्य-योजना, पद-योजना, वाक्यों का फैलाव, पदपरिचय, पदों की भिन्न २ अवस्था, वाक्य-विश्लेषण, भाषा कहावत, मुहाविरा, रस, गुण, दोष आदि रचना सम्बन्धी बातों का वर्णन है।

तीसरे में—पहले रचना सम्बन्धी प्रारंभिक बातें अर्थात् रचना का उद्देश्य, प्रारंभिक-अभ्यास, सामग्री, प्रबंध-भेद-**वर्णक, कथात्मक, आलोचनात्मक और व्याख्यात्मक**, ढांचा, समाप्ति, विराम-चिह्न, हर प्रकार के प्रबंधों का विषय विभाग करना, क्रम देना, तथा प्रभावशाली और संक्षिप्त भाषा में वाक्य रचना करने का नियम दिखाया है।

और क्रम और विभाग सहित देशी कारीगरी, और उसकी उन्नति के उपाय आदि नमूने के कोई ५० विषयों पर प्रबंध दिये हैं। पृष्ठ संख्या १६० मूल्य ॥)

इस पुस्तक से यही नहीं कि पुस्तक में दिये हुए विषयों पर ही लेख लिख सकें वरन हर एक नये विषय पर क्रम के विभाग करके लेख लिखना आता है।
